Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदत्त

# वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान

# हिन्दू राष्ट्र

43
V
77

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

167977
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान

# हिन्दू राष्ट्र

Central Library
167977
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

गुरुदत्त

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web.: aarshsahitya.com

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली - 110005

081
167977
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

© सुरक्षित

R
089.9143
GUR-V

मूल्य : 50/-

संस्करण 2014
प्रकाशक हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी. चैम्बर्स , 10/54 देश बन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग पुलिस स्टेशन के पास, नई दिल्ली-110005
E-mail: indiabooks@rediffmail.com
hindisahityasadan@gmail.com
Website: www.hindisahityasadan.com
टैलिफैक्स 011-23553624 , 011-23551344 , 09213527666
मुद्रक संजीव आफसैट प्रिंटर्स, दिल्ली

---

Vartamaan Durvyavastha Ka Samadhaan HINDU RASHTRA

By Guru Datt

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान
# —हिन्दू राष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**श्री गुरुदत्त की राजनीतिक रचनाएं**

धर्म संस्कृति और राज्य
भारत गांधी नेहरु की छाया में
राष्ट्र राज्य और संविधान
हिन्दुत्व की यात्रा
स्व अस्तित्व की रक्षा (2 भाग)
धर्म तथा समाजवाद
मनुष्य और समाज
भारत में राष्ट्र
प्रजातंत्र अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था
बुद्धि बनाम बहुमत
अन्तिम यात्रा (डा0 मुखर्जी की)
मैं हिन्दू हूँ (राजनैतिक संस्मरण)
भाव और भावना (संस्मरण)
भाग्यचक्र (संस्मरण)
स्वाधीनता के पथ पर (स्वाधीनता आन्दोलन 1930 से 35 का काल)
पथिक (स्वाधीनता आन्दोलन 1935 से 40 का काल)
स्वराज्यदान (स्वाधीनता आन्दोलन 1940 से 46 का काल)
विश्वासघात (स्वाधीनता आन्दोलन 1946 से 47 का काल)
देश की हत्या (स्वाधीनता आन्दोलन 1947 से 48 का काल)
दासता के नए रुप (1948 से 49 का काल)
सदावत्सले मातृभूमे (1949-.... का काल

**श्री गुरुदत्त की वेद, श्रीमद्भगवद्गीता, दर्शन शास्त्रों व उपनिषदों पर रच**

श्रीमद्भगवद्गीता (भाष्य)
श्रीमद्भगवद्गीता (अध्ययन)
यजुर्वेद और गृहस्थ धर्म
हमारी सांस्कृतिक धरोहर
वेद प्रवेशिका (सम्पूर्ण)
ईश केन् कठ उपनिषद
प्रश्न ऐत्तरेय उपनिषद
मुण्डक माण्डूक्य उपनिषद
तैत्तिरीय उपनिषद
वेद मन्त्रों के देवता
वेद और वैदिक काल
विश्वेदेवा
सायंस और वेद
अद्वैत मीमांसा
विज्ञान और विज्ञान
सृष्टि रचना
सांख्य दर्शन
न्याय दर्शन
ब्रह्मसूत्र (वेदान्त दर्शन)
ब्रह्मसूत्र (वेदान्त दर्शन)
वेदों में सोम
वेदों में इन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विषय क्रम


१. भूमिका ९

२. खण्ड एक

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्रथम अध्याय | : | हिन्दू राज्य का भूत | १५ |
| द्वितीय अध्याय | : | हिन्दू मज़हब नहीं है—१ | १७ |
| तृतीय अध्याय | : | हिन्दू कोई मज़हब नहीं है—२ | २१ |
| चतुर्थ अध्याय | : | हिन्दू राष्ट्र में मज़हब का विचार नहीं— | २७ |
| पंचम अध्याय | : | वर्तमान भारत और हिन्दू राष्ट्र | २९ |
| षष्ठ अध्याय | : | राज्य और राष्ट्र | ३६ |
| सप्तम अध्याय | : | राज्य और राष्ट्र | ३७ |

३. खण्ड दो

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्रथम अध्याय | : | राज्य और राष्ट्र एक ही क्यों नहीं ? | ४२ |
| द्वितीय अध्याय | : | राज्य और राष्ट्र का सम्बन्ध—१ | ५० |
| तृतीय अध्याय | : | राज्य और राष्ट्र का सम्बन्ध—२ | ५९ |
| चतुर्थ अध्याय | : | अर्थ-व्यवस्था और शासन—१ | ६३ |
| पंचम अध्याय | : | अर्थ-व्यवस्था और शासन—२ | ७१ |

४. खण्ड तीन

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्रथम अध्याय | : | संसद राष्ट्र है अथवा राज्य ? | ७८ |
| द्वितीय अध्याय | : | राष्ट्र का अधिकार (शिक्षा) | ८४ |
| तृतीय अध्याय | : | राष्ट्र और अर्थ-व्यवस्था | ९१ |
| चतुर्थ अध्याय | : | धर्म-व्यवस्था एवं न्याय-व्यवस्था | ९४ |


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पंचम अध्याय : शासन ९८
षष्ठ अध्याय : राज्य की विभिन्न सभाओं के निर्वाचन १००

५. खण्ड चार
प्रथम अध्याय : राष्ट्र के स्वरूप को सँवारने का उपाय १०४
द्वितीय अध्याय : बुद्धि का विकास ११०
तृतीय अध्याय : राष्ट्र और मज़हब ११४

६. उपसंहार ११८


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# शाश्वत संस्कृति परिषद्

शाश्वत का अर्थ है सदा रहनेवाला, नित्य। जो नित्य है वह सबके लिए है।

ज्ञान का मूल स्रोत परमात्मा है और परमात्मा का ज्ञान वेद ज्ञान है। यह ज्ञान प्राणीमात्र के लिये है।

जैसे एक वृक्ष, जिसका सम्बन्ध मूल से कट गया हो, शीघ्र ही सूखने तथा सड़ने लगता है, इसी प्रकार मानव समाज भी, मूल ज्ञान से विच्छिन्न हो सूख तथा सड़ रहा है। मानव-समाज मानवता-विहीन हो रहा है।

इस मानव समाज को पुनः ज्ञान के उस मूल स्रोत—वेद से जोड़ने का एक प्रयास ही यह शाश्वत संस्कृति परिषद् है।

इसी प्रयास में परिषद् पिछले लगभग बीस वर्षों से प्रकाशन कार्य कर रहा है। इस समय तक विभिन्न विषयों पर लगभग बीस छोटे-बड़े ग्रन्थ प्रकाशित किये जा चुके हैं जो अपने ढंग के अनूठे हैं।

अपने इस प्रयास में हम सभी भारतवासियों, हिन्दुत्व प्रेमियों से सहयोग की आकांक्षा रखते हैं।

**अशोक कौशिक**
**मंत्री**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भूमिका

हिन्दू तथा हिन्दुस्तान पर जो कुछ मैं लिख चुका हूं, उस सबके लिखने के उपरान्त पुनः इस विषय पर लिखने की आवश्यकता इस कारण अनुभव हुई है कि जानबूझ कर, आँखें मूंदे हुओं को बलपूर्वक हाथ पकड़कर झकझोरना है। इसी दिशा में कुछ करने की इच्छा से यह मेरा प्रयास है।

बम्बई की एक अंग्रेज़ी साप्ताहिक पत्रिका 'इलस्ट्रेटिड वीकली' ने अंक जून १५—२१, सन् १९८० इस विषय में निकाला है। उसने अपने अंक का नाम रखा है—"Should India be A Hindu State?"

इस लेख के शीर्षक में ही हेत्वाभास है। हेत्वाभास का अर्थ है कि निर्दिष्ट हेतु (उद्देश्य) का आभास मात्र हो, परन्तु उद्देश्य कुछ अन्य हो। यह मैं इस कारण कहता हूं कि अंग्रेज़ी भाषा कोश (Webster's English Dictionary) में अंग्रेज़ी शब्द 'स्टेट' के दस अर्थ दिये हैं। पत्रिका का सम्पादक उन दस में से किन-किन अर्थों पर लेख लिखाना चाहता था, यह उसने कहीं भी स्पष्ट नहीं किया।

इन दस अर्थों में सम्भवतया दो अर्थ हैं जिनके विषय में ही उसका आशय हो सकता था और ऐसा प्रतीत होता है कि पाठक तथा लेख लिखने वालों के मन में इन दोनों अर्थों में अनजाने में भ्रम उत्पन्न करने का यत्न हो गया है।

सम्पादक को अथवा पत्रिका में लेख लिखने वालों को स्वयं यह स्पष्ट करना चाहिये था कि वे 'स्टेट' के किस अर्थ पर अपने लेख में विचार प्रकट कर रहे हैं।

अंग्रेज़ी भाषा के लेखकों का यही चातुर्य है और वे अपने कथनों से किसी प्रकार का विभ्रम फैलाना अपना अधिकार समझते हैं। यहाँ तक कि राज्य नियम बनाने वाली संसद में कहे शब्दों को भी सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायधीश धोखे की टट्टी समझते हैं। यही कारण है कि न्यायाधीश किसी कानून के अर्थ लगाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समय संसद में पारित कानून का जो उद्देश्य बताया जाता है, उसे प्रमाण नहीं मानता। कानून के शब्दों पर ही बहस की जाती है। कानून उपस्थित करने वाले मंत्रियों के घंटों भर दिये व्याख्यानों को व्यर्थ की बकवास माना जाता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि या तो कानून उपस्थित करने वाले मंत्री महोदय ने सब सदस्यों को उल्लू बनाया था, अथवा न्यायालय में कानून पर विचार करने वाले न्यायधीशों ने मंत्री के व्याख्यानों को व्यर्थ समझ तिरस्कृत कर दिया है।

यही बात इस पत्रिका के सम्पादक के विषय में है और इसी कारण हमें कुछ कहने का अवसर मिला है।

जैसा कि ऊपर बताया है कोश में 'स्टेट' शब्द के अर्थ कई हैं। इनमें राज-नीति सम्बन्धी अर्थ तीन हैं। वे तीन अर्थ हम यहाँ देना चाहते हैं।

अर्थ ५ ए इस प्रकार है—A body of people permanently occupying a definite territory and politically organised under a sovereign government almost entirely free from external control and possessing coercive power to maintain order within the community.

अर्थ ६ हैं—operations, activities or affairs of the government or ruling power of a country; the sphere of administration and supreme political power of a government.

अर्थ ७ हैं—One of the body's politic or component units in a federal system that is more or less independent and sovereign over internal affairs but forms with the other units a sovereign nation. (Webster's Third New International Dictionary 1967)

'स्टेट' शब्द के दस अर्थों में ये तीन अर्थ राज्य, देश तथा प्रजा से सम्बन्ध रखते हैं। संक्षेप में इनके अर्थ हिन्दी में इस प्रकार हैं—

अर्थ ५ ए का अभिप्राय है—एक जनसमूह, जो एक भूमि खण्ड अथवा देश में स्थाई रूप से रहता हो, जो एक स्व-सत्ता सम्पन्न राज्य में राजनैतिक ढंग से शासित हो, जो विदेशी नियंत्रण से मुक्त हो और अपने में शासन की सामर्थ्य रखता हो।

अर्थ ६ का अभिप्राय है—राज्य का कार्य, गतिविधियाँ अथवा राज्य विषयक देश पर शासक पार्टी की शासन प्रणाली और शासन की अबाध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सामर्थ्य।

अर्थ ७ का अभिप्राय है—एक फैडरल राज्य के अंग जो अपने भीतरी मामलों में सर्वथा स्वतंत्र हों और दूसरे राज्यों से मिल कर एक स्वतंत्र कौम बनाते हों।

निःसन्देह अंग्रेज़ी लेखक शब्द-कोश के अर्थ ५-ए और ६-ए में विभ्रम-उत्पन्न कर रहे हैं। यह अंग्रेज़ी कानूनदानों का स्वभाव है, जिससे कभी विषय को तर्क-वितर्क की कसौटी पर कसा जाये तो वे अपने कहे से मुकर सकें।

बम्बई की इस साप्ताहिक पत्रिका के लेखक भी "स्टेट" शब्द के अर्थ की व्याख्या किये बिना, इस विषय पर लेख लिखने बैठ गये हैं।

अतः लेखों का आह्वान करने वाला या तो कोई सर्वथा अनभिज्ञ व्यक्ति मानना पड़ेगा अथवा कोई धूर्त कहना पड़ेगा। उसने इस लेख को सजाने के लिये कुछ हिन्दू मजहबी चित्र भी दिये हैं। उदाहरण के रूप में—पत्रिका के मुखपृष्ठ पर राम-सीता का एक चित्र दिया है, जिसमें मूंछ वाला हनुमान बैठा है।

फिर एक पृष्ठ पर एक मुसलमान का, कानों में उंगली दे, आज़ान देने का चित्र है। एक सिक्ख सभा का चित्र भी दिया है, जिसमें कोई सिक्ख सज्जन उंगली खड़ी कर कुछ कह रहा है। एक हठ योगी का चित्र है। एक चित्र किसी तांत्रिक का प्रतीत होता है और फिर किसी को बांसुरी बजाते हुए भी दिखाया है। कई तिलकधारी लड़के भी एक चित्र में दिखाये गये हैं।

इन चित्रों को देने के दो ही अर्थ हो सकते हैं। एक यह कि हिन्दुओं के कुछ एक मजहबों की हँसी उड़ाई जाये तथा दूसरे, इन चित्रों का इस गम्भीर विषय पर लेखों के साथ देकर हिन्दू राष्ट्र को बदनाम किया जाये।

सम्भवतः पत्रिका का सम्पादक हिन्दू समुदाय के विषय में बहुत ही सीमित ज्ञान रखता है। अथवा यह भी सम्भव है कि हिन्दू राष्ट्र का मज़ाक उड़ाने के लिये उसने कुछ हिन्दू समुदायों के मजहबी चित्र दे दिये हैं।

कदाचित् सम्पादक यह भूल गया है कि महात्मा गांधी अपने को राम-भक्त कहते हुए भी राम कथा को एक अध्यात्म की कथा मात्र मानते थे और राम, लक्ष्मण, सीता इत्यादि को ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं मानते थे।

हिन्दुओं में एक आर्यसमाज सम्प्रदाय भी है। वह देवी-देवताओं को नहीं मानता। यहां तक कि अपने प्रवर्त्तक महर्षि स्वामी दयानन्द के चित्र की ओर पीठ कर इसके नेता व्याख्यान दे देते हैं। वेदान्त भी हिन्दू सम्प्रदायों में से एक सम्प्रदाय है और वह तो ईंट-पत्थर को भी वैसा ही ब्रह्म मानता है, जैसे राम, कृष्ण को।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हिन्दुओं के अनेक मज़हब अवश्य हैं, परन्तु ये हिन्दू राष्ट्र के प्रतीक नहीं हैं। हिन्दू समुदाय इन सबसे ऊपर और पृथक् एक विचार है जो राष्ट्र के नाम से अस्तित्व रखता था और फिर रखने के यत्न में है।

जब हम हिन्दू राष्ट्र (Hindu State) की कल्पना करते हैं तो शब्द कोश के अर्थ ५-ए वाले 'स्टेट' से हमारा अभिप्राय है।

जहां तक अर्थ ६ का सम्बन्ध है, वैसा 'स्टेट' न तो हिन्दू हो सकता है, न मुसलमान। वह न प्रजातन्त्र है, न ही अधिनायकवाद। उसमें शासन मुख्य है। शासन का अभिप्राय है—लॉ ऐंड आर्डर अर्थात् न्याययुक्त शान्ति-व्यवस्था। शासक राजा हो अथवा प्रजा, यदि शान्ति-व्यवस्था न्याययुक्त नहीं तो वह शासक, शासक नहीं।

तनिक विचार करिये। देश के पीनल कोड का आशय इन मुख्य धर्मों के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है—सत्य, चोरी न करना, धैर्य, अक्रोध, मन और इन्द्रियों पर काबू रखना, बुद्धि से विचार कर बात करना। ये पांच-छः बातें ही तो हैं जो किसी भी सभ्य शासन क्षेत्र में हो सकती हैं। जो शासन धर्म के इन अंगों को विकृत करता है, वह शासन नहीं है। वह इन अर्थों में स्टेट नहीं है।

हमारा अभिप्राय यह है कि धर्म के इन अंगों में, जिसे चलाने के लिये शासन निर्माण किया जाता है, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी कहां से आ गये ?

शासन-व्यवस्था तो शुद्ध, पवित्र, प्राकृतिक नियमों (natural laws) के अनुसार होनी चाहिये। सुलेमान, यहूदी, शैव अथवा वैष्णव मत का शासन-प्रणाली (administration) में उल्लेख नहीं आता। जहां यह आता है, वह शासन नहीं। अतः जब कोई व्यक्ति कहता है कि भारत में हिन्दू स्टेट हो तो उसका अभिप्राय अर्थ ५-ए से ही होता है।

हमें खेद है कि पत्रिका के लेखकों ने भी यह स्पष्ट नहीं किया। इसका अर्थ है कि जानबूझ कर अथवा अज्ञानता के कारण उन्होंने भ्रम फैलाने का यत्न किया है।

इस आरोप से पत्रिका का सम्पादक भी मुक्त नहीं समझा जा सकता। उसने कहा नहीं कि स्टेट से वह क्या अभिप्राय ले रहा है और लेखक भी दोषमुक्त नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उन्होंने भी बताया नहीं कि वे 'स्टेट' के क्या अर्थ ले रहे हैं।

वास्तव में भारत की पूर्ण-दुर्व्यवस्था इन अंग्रेजी पढ़े-लिखों ने ही उत्पन्न की हुई है जो बिना जाने कि उनके कथन का क्या अर्थ है, दूसरों की निन्दा करने लगते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पत्रिका में श्री पी० एन० ओक का लेख बहुत सीमा तक हमारे आशय को प्रकट करता है। जब वह कहते हैं कि—'Why not the whole world be Hindu ?' तब वह यही कह रहे प्रतीत होते हैं कि हिन्दू स्टेट के शुभ लक्षणों वाला पूर्ण भूमण्डल होना चाहिये।

इसमें शुभ लक्षण क्या हैं ? इन लक्षणों का विचार करना ही इस पुस्तक का उद्देश्य है।

हम 'स्टेट' का अर्थ राष्ट्र लेते हैं, राज्य नहीं। राष्ट्र और राज्य में अन्तर है। शासन (government) अथवा राज्य तो प्राकृतिक नियमों (natural laws) के आधार पर चलना ही चाहिये। परन्तु राष्ट्र का कर्त्तव्य और कार्य कुछ भिन्न है।

यहां हम यह भी स्पष्ट करेंगे कि राज्य किस प्रकार राष्ट्र के किन साधनों से और कैसे दोनों में विरोध रोक सकता है।

ईश्वर भारतवासियों में सद्बुद्धि जागृत करे कि वे अंग्रेज़ी भाषा के गोरख-धंधे को छोड़ सरल हिन्दुस्तानी में बातें किया करें। अंग्रेज़ी भाषा में लिखे वाक्यों के नित्य नये अर्थ न्यायालयों में निकाले जाते हैं।

यहां एक बात और स्पष्ट कर देना आवश्यक है। वह है शब्द सैक्युलर के विषय में। बम्बई की इसी पत्रिका के इसी अंक के एक लेखक ने लिखा है—'No going back on secular concept' अर्थात् सैक्युलर के भाव से वापस नहीं जायेंगे।

लेखक का 'सैक्युलर' के किस अर्थ से अभिप्राय है ? 'सैक्युलर' शब्द के भी शब्द-कोश में ग्यारह अर्थ हैं और उन ग्यारह अर्थों में एक अर्थ—'profane' भी है। प्रोफेन का अर्थ है—अपवित्र।

इसी कारण हम पूछते हैं कि जब वह यह कहता है कि भारत का राज्य सैक्युलर होगा तो क्या उसका अभिप्राय यह है कि भारत का राज्य प्रोफेन (अपवित्र) होगा ?

न तो उस लेखक ने अपने दो-अढ़ाई पृष्ठों के लेख में सैक्युलर शब्द की व्याख्या की है, न ही हमारे संविधान का संशोधन करने वालों ने यह कष्ट किया है कि भारत संविधान के लम्बे-चौड़े पोथे में दो पंक्तियां सैक्युलर शब्द के अर्थ समझाने के लिये लिख देते।

इस संदिग्ध अर्थ वाले शब्द के संदिग्ध प्रयोग का परिणाम यह हो रहा है कि सरकारी धन जहाँ अलिगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में मस्जिद बनाने में व्यय हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रहा है, वहां मस्जिद बनाने वालों का निर्माण भी हो रहा है। बुद्ध के मन्दिर और विश्राम गृह बनाने में अपार धन व्यय किया जा रहा है। बौद्ध एक मत है, एक नास्तिक पंथ है। इस देश के लाखों-करोड़ों रुपये इसे विख्यात करने में व्यय किये जा रहे हैं। तो क्या इसी कारण सेक्युलरिज़्म की महिमा गायी जा रही है? यह इस देश में महापाप हो रहा है और इसमें भागीदार वे सब हैं जो बिना सेक्युलर शब्द का अर्थ स्पष्ट किये उसके गुण गाने लगे हैं।

हमारा यह मत है कि वर्तमान भारत राज्य एक बहुत बड़ा मज़हबी राज्य है और यह अपने असली रूप को छुपाने के लिये 'सेक्युलर' शब्द की छतरी तान कर बचने का यत्न कर रहा है।

यह धोखाधड़ी चिरकाल तक नहीं चल सकेगी। या तो देश पुनः दासता में फंस जायेगा अथवा इस धोखाधड़ी का पर्दाफाश होगा।

मैं हिन्दू राष्ट्र चाहता हूं। यही स्पष्ट करने का मैंने प्रयास किया है।

—गुरुदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्ड एक

# प्रथम अध्याय

## हिन्दू राज्य का भूत

जब से इस्लामी आक्रमण इस देश पर आरम्भ हुए, तब से ही हिन्दुस्तान के रहने वाले उनका विरोध करते रहे हैं। ये विरोध विदेशियों के आक्रमण के थे।

सन् ७१२ ईसवी में सिन्ध पर प्रथम इस्लामी आक्रमण हुआ था और उसका विरोध सिन्ध के राजा दाहर ने किया था। पीछे गज़नी के महमूद ने भारत में लूट मचाने के विचार से कई आक्रमण किये। इनका भी यत्र-तत्र विरोध होता रहा। जब मुहम्मद गौरी ने दिल्ली में अपना राज्य स्थापित किया, तब भी विरोध हुआ था। ये सब विरोध हिन्दुस्तानी शासकों के द्वारा विदेशियों के विपरीत ही थे।

इसके उपरान्त भी, जब इस्लामी शासन स्थापित हो गया था, तब भी विरोध हुआ था—पठानों के राज्य काल में और मुगलों के राज्यकाल में भी; राजपूतों द्वारा, मराठों द्वारा तथा बुन्देलों द्वारा और अन्त में सिक्खों द्वारा। इन सब विरोधों में देशवासी विदेशियों के विपरीत लड़े थे।

ये सब विरोध सफल नहीं हुए। इसमें कई कारण हैं। संसार में कुछ भी अकारण नहीं होता। हम समझते हैं कि इसका प्रमुख कारण था हिन्दू समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियां। ब्राह्मणों ने ज्ञान को ब्राह्मण जाति के घटकों तक ही सीमित रखने का यत्न किया था। विचारक और नेता तो देश की सब जातियों में उत्पन्न होते रहे हैं। परन्तु ब्राह्मणों का, वेद ज्ञान और श्रेष्ठ भाषा को अपने तक सीमित रखने का परिणाम यह हुआ कि देश में अनेक मत-मतान्तर उत्पन्न हो गये, अनेक व्यवहार उत्पन्न हो गये और परस्पर सामंजस्य का अभाव दिखाई देने लगा।

इससे भी अधिक यह हुआ कि ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार पैतृक माना गया। इससे ज्ञान में ह्रास आरम्भ हुआ और सांसारिक उन्नति में हिन्दुस्तानी पिछड़ने लगे। युद्ध विद्या में, आयुधों के निर्माण में और जीवन के अन्य क्षेत्रों के व्यवहार में भारतवासी पिछड़ गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समाज में मिथ्या जन्म-जाति तथा ऊंच-नीच के चलन तथा संगठनात्मक साधनों में न्यूनता आ जाने से विदेशियों का विरोध सफल नहीं हो सका। इस पर भी विरोध होता रहा और इस विरोध ने अन्त में इस्लामी राज्य को भारत में जर्जर करके ही रख दिया।

अंग्रेज़ों के शासक के रूप में प्रकट होने के समय अर्थात् १७५७ में प्लासी पर अंग्रेजी विजय के समय, भारत में इस्लामी राज्य प्रायः निःशेष हो चुका था। दो-तीन मुसलमानी राज्य अपने-अपने क्षेत्र में कुछ मीलों की ही परिधि में रह गये थे। दिल्ली के मुगल मराठों के अंगूठे तले थे। मैसूर में टीपू मराठों से भयभीत अंग्रेजों से सन्धि करने में लीन था। पंजाब में सिक्खों की मिसलें वहां के पठानों और तुर्कों को भयभीत कर रही थीं। अवध के नवाब हिन्दुस्तानी ताल्लुकदारों के आश्रय अपना वासनामय जीवन चला रहे थे।

अभिप्राय यह है कि सन् ७१२ ईसवी से लेकर सन् १७५७ ईसवी तक जो संघर्ष रहा, वह विदेशी आक्रान्ताओं और देश-रक्षकों में था। यह संघर्ष विदेशियों के विरुद्ध स्वदेश-प्रेमियों का था। यदि राणा प्रताप ने अकबर का विरोध किया था तो एक विदेशी जान कर किया था। इसी प्रकार शिवाजी ने बीजापुर और गोलकुण्डा राज्यों से युद्ध किये थे तो उनको विदेशीय समझ कर किये थे। यह इस बात से स्पष्ट होता है कि जब-जब भी शिवाजी और राणा प्रताप को मुसलमानों ने सहायता देनी चाही, उसने इन्कार नहीं किया। शिवाजी की सेना में भी मुसलमान सैनिक थे और हल्दी घाटी के युद्ध में भी राणा की ओर से लड़ने के लिये कुछ पठान आये थे। यहां तक कि अंग्रेज़ों के विरुद्ध हुए प्रथम वृहत् प्रयास (सन् १८५७) में भी हिन्दुस्तान के प्राचीन रहने वाले हिन्दुओं के साथ-साथ मुसलमान भी सम्मिलित हुए थे।

इस प्रकार जहां तक हिन्दुस्तान के रहने वालों का संघर्ष था, वह देश के रहने वालों का विदेशियों के विरुद्ध ही था। इस शुद्ध राजनीतिक संघर्ष में विषमता का कारण यह हुआ कि आक्रान्ता मुसलमान और युरोपियन पुर्तगाली, फ्रांसीसी तथा अंग्रेज भी, मज़हब को आश्रय और मज़हब को उद्देश्य बना कर युद्ध करते रहे।

मुसलमान आक्रान्ताओं ने इस्लाम को अपनी विजयों में आश्रय बनाया। तबलीग और ताहिद के परचम फहराते हुए देश में आये और राज्य स्थापित हो जाने पर यथा-सम्भव शरअ की हकूमत चलाने का यत्न करते रहे। उन्होंने अपने राज्य को एक इस्लामी राज्य प्रकट करने में संकोच नहीं किया।

और जब युरोपियन आये तो ईसाईयत भी इन आक्रान्ताओं के कंधों पर चढ़ी हुई यहां आयी और युरोपियन राज्य सन् १८५७ तक ईसाईयत के प्रचार और विस्तार में सहायक होते रहे। यहां तक कि सन् १८५७ के युद्ध का एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मुद्दा यह भी था कि ईस्ट इंडिया कम्पनी हिन्दुस्तानियों के मजहबों में हस्तक्षेप करती है। फिर सन् १८५७ के उपरान्त और मलिका विक्टोरिया के अपने ऐलान में मजहब-निरपेक्ष राज्य स्थापित करने की घोषणा करने पर भी ईसाइयों को हिन्दू और मुसलमानों पर अधिमान दिया जाता था। यह अधिमान नग्न रूप में सरकारी नौकरियों और रेल विभाग में सन् १९१० तक दिया जाता रहा।

इन विदेशियों के आक्रमणों और शासकों द्वारा मज़हबों को आधार बनाने का परिणाम यह हुआ कि देशवासियों का विरोध उनके महज़बों का विरोध ही माना जाने लगा। मज़हब का विरोध करने वाले भी मज़हबी बन गये। कहावत है कि—irreligiousness is also a religion. यही बात आक्रान्ताओं के विरोध में हिन्दुस्तानियों की हो गयी। सन् ७१२ ईसवी से लेकर सन् १७५७ ईसवी तक जब मुसलमानी राज्य की हिन्दुस्तान में अन्त्येष्टि हुई और सन् १७५७ से लेकर १९४७ तक अंग्रेज़ी शासन का विरोध करने वाले भी एक मज़हब बन गये। वास्तव में ये विरोध करने वाले हिन्दुस्तान के रहने वाले हिन्दू ही थे। हिन्दू हिन्दुस्तान के रहने वाले थे। वे विदेशी आक्रान्ताओं का सदियों तक विरोध करते रहे थे और क्योंकि आक्रान्ता मज़हबी ठेलों (wagons) पर सवार होकर यहाँ आये, इस कारण उनके विरोधी भी एक मज़हब मान लिये गये। वास्तव में हिन्दू हिन्दुस्तान के रहने वाले हिन्दुस्तान से प्रेम रखने वाले लोग हैं और इसकी खुशहाली के लिये त्याग तथा तपस्या करते रहे हैं। जब तक हिन्दू नाम रहेगा, ये देश की सुरक्षा और खुशहाली के लिये त्याग तथा तपस्या करते रहेंगे।

अतः हिन्दू मज़हब नहीं है। हिन्दू, हिन्दुस्तान देश के रहने वाले हैं।

———

# द्वितीय अध्याय

## हिन्दू मजहब नहीं है—(१)

विचारणीय यह है कि मज़हब क्या होता है? भूमण्डल के दो बड़े मज़हबों पर विचार करें तो मज़हब शब्द के अर्थ स्पष्ट हो जायेंगे। दो बड़े मज़हब हैं इस्लाम और ईसाईयत। अतः इन पर विचार करना चाहिये। इन दोनों को, उनके अनुयायी भी मज़हब ही मानते हैं। ईसाई मज़हब दो सहस्र वर्ष पुराना है और इस्लाम तेरह सौ वर्ष से चला आ रहा है। वैसे तो एक नवीन मज़हब भी है। नवीन मज़हब से हमारा अभिप्राय कम्यूनिज्म से है।

पहले ईसाई मत पर ही विचार करेंगे। बाइबल में एक कथन है—

Let not your heart be troubled: Ye believe in God,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



believe also in me.[१]

अर्थ हैं—तुम चिन्ता न करो, तुम परमात्मा में और मुझमें विश्वास रखो। और भी लिखा है—

Jesus saith unto him, I am the way, and the truth, and the life; no man cometh unto the Father, but by me.[२]

अर्थात्—यशु मसीह ने उसे कहा—मैं ही मार्ग हूं, मैं ही सच्चाई हूं और जीवन हूं। कोई परमात्मा से नहीं मिल सकता; बिना मेरी सहायता के।

एक अन्य स्थान पर कहा है—

All that ever came before me are thieves and robbers[३]

अर्थ हैं—वे जो कभी मुझसे पहले आये थे, चोर और लुटेरे थे।

इन कथनों में कोई बात भी बुद्धिगम्य नहीं है। सब कुछ पूर्णरूपेण विश्वास और श्रद्धा पर आधारित है। बस, हमारा यह कहना है कि यह मजहब है।

क्या यह सत्य माना जा सकता है कि हज़रत ईसा से पहले जो (पैगम्बर) आये थे, वे सब चोर और लुटेरे थे? क्या यह माना जा सकता है कि घोर पाप कर्मों का करने वाला हज़रत ईसा के आश्रय से उन पाप कर्मों के फल से बच जायेगा? इसमें कोई युक्ति नहीं।

इसी प्रकार इस्लाम भी मज़हब है। एक आयत है—

इस्तग्फिर् लहुम् औं ला तस्तग्फिर लहुम् त् इन् तस्त ग़फिर लहुम् सबीन मर्रतन् फलैयग़फ़िरल्लाहु लहुम् त जालिक बिअन्न-हुम् कफ़रू बिल्लाहि व रसूलिही त वल्लाहु ला यह् दिल्कौमल्-फ़ासिकीन।[४]

इसका अभिप्राय है—तुम उनके लिये क्षमा की प्रार्थना करो, या क्षमा की प्रार्थना न करो; यदि तुम सत्तर बार भी उनके लिये क्षमा की प्रार्थना करोगे तो भी अल्लाह उन्हें कदापि क्षमा नहीं करेगा। यह इसलिये कि उन्होंने अल्लाह और उसके पैगम्बर (रसूल) से कुफ्र किया है और अल्लाह अवज्ञाकारियों (न-फरमानी करने वालों) को मार्ग नहीं दिखाता।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर कहा है—

कुल् या ऐयुहन्नासु इन्नी रसूलुल्लाहि इलैकुम् जमीजय लहु मुल्कु-

---

१. John 14-1, Holy Bible
२. Ibid. 14-6
३. Ibid. 10-8
४. सुरः—9, आयत—80

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्समावाति वल्अर्जिज्ला इलाह् इल्ला हुव युह्य व युमीतु स फआमिनू बिल्लाहि व रसूलि-हिन्नबीयिल जुम्मीललजी युअमिनु बिल्लाहि व कलिमातिह् वत्तबिअुहु लअल्लुकम् तह् तदून।[१]

अर्थात्—[अल्लाह कहता है—ऐ पैगम्बर !] तुम कहो कि लोगों में तुम सबकी तरफ़ उस अल्लाह के भेजे हुए हो, जिसकी बादशाही आसमान और ज़मीन पर है; उसके सिवा और कोई पूजित नहीं। वही जिलाता और मारता है। तो अल्लाह पर ईमान लाओ और उसके भेजे हुये उसके अनपढ़ नबी पर, जो अल्लाह और उसकी किताबों पर ईमान रखते हैं और उन्हीं की पैरवी करो, शायद तुम सीधी राह पर आ जाओ।

एक अन्य कुरआन में इसी आयात का अनुवाद इस प्रकार लिखा है—

Say (O Muhammad !) : O mankind ! Lo ! I am the messenger of Allah to you all (the messenger of) Him unto whom belongeth the Sovereignty of the heavens and earth. There is no God save Him. He quikeneth and He giveth death. So believe in Allah and His messenger, the Prophet who can neither read nor write, who belicveth in Allah and in His words and follow him that happily ye may lead aright.[२]

और एक अन्य स्थान पर कुरआन में कहा है—

फला व रब्बिक ला युअमिनून हत्ता युहक्किमूक फी मा शजर बैनहुम् सुम्म ला यजिदू फी अन्फ़ुसिहिम् हरजम्मिम्मा कज़ैत व युसल्लिमू तस्लीमन्।।[३]

अर्थात्—सो तुम्हारे परवरदिगार की कसम कि जब वे लोग आपसी झगड़ों में तुमको मुत्सिफ न जानें और फिर तुम्हारे फैसले को न मानें, तब तक वे ईमान वाले न होंगे।

इस प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें यह कहा गया है कि जो कुछ पैगम्बर साहब कहते हैं, वह ही सत्य है और उसको न मानो तो तुम ईमान वाले (मज़हब के मानने वाले) नहीं कहे जा सकते।

बस, इसी को हम मज़हब मानते हैं। बिना हील-हुज्जत के गुरु, पीर-पैगम्बर तथा रसूल की बात को मानना मज़हब है। अथवा बिना बुद्धि द्वारा परीक्षा

१. सुरः—७,—आयत १५८
२. मकतबा अलहसनात, रामपुर उत्तर प्रदेश।
३. सुरः—४, आयत—६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



किये किसी पुस्तक को मार्ग-दर्शक मान लेना मज़हब है।

और हमारा कहना है कि, किसी की भी कही बात को, जब तक बुद्धि स्वीकार न करे तब तक न मानना मज़हब का न होना है।

हिन्दू धर्मग्रन्थ क्या कहते हैं? भगवद्गीता में कहा है—

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।[1]

अर्थात्—हे अर्जुन! बुद्धि से दूर कर्म निकृष्ट है।

इसी कारण हम कहते हैं कि गीता के मानने वाले मज़हबी नहीं हैं। मज़हब वह है जिसमें रसूल, गुरु, पीर, पैगम्बर की बात को बिना सोचे-समझे स्वीकार करने के लिये कहा जाये।

ऐसे कुछ सम्प्रदाय प्राचीन हिन्दुस्तानियों में भी रहे हैं, जहां बुद्धि के प्रयोग को अमान्य किया गया है। हम उनको भी मज़हब ही मानते हैं।

उदाहरण के रूप में स्वामी शंकराचार्य ब्रह्मसूत्रों के अपने भाष्य में कहते हैं—

इतश्च नागमगम्येऽर्थे केवलेन तर्केण प्रत्यस्थातव्यम्। यस्मान्निरागमाः पुरुषोत्प्रेक्षामात्रनिबन्धानास्सर्का अप्रतिष्ठिता भवन्ति, उत्प्रेक्षाया निरङ्कुशत्वात्। तथा हि कैश्चिदभियुक्तैर्यत्नेनोत्प्रेक्षितास्तर्का अभियुक्ततरैरन्यैराभास्यमाना दृश्यन्ते। तैरप्युत्प्रेक्षिताः सन्तस्ततोऽन्यैराभास्यन्त इति न प्रतिष्ठितत्वं तर्काणां शक्यमाश्रयितुम्, पुरुषमतिवैरूप्यात्। अथ कस्यचित्प्रसिद्धमाहात्म्यस्य कपिलस्य चान्यस्य वा संमतस्तर्कः प्रतिष्ठित इत्याश्रीयेत, एवमभ्यप्रतिष्ठितत्वमेव, प्रसिद्धामाहात्म्यानुमतानामपि तीर्थकराणां कपिलकणमुक्प्रभृतीनां परस्परविप्रति-पत्तिदर्शनात्। अथोच्येतान्यथा वयमनुमास्यामहे यथा नाप्रतिष्ठादोषो भविष्यति। नहि प्रतिष्ठितस्तर्क एव नास्तीति शक्यते वक्तुम।[2]

अर्थात्—इस कारण आगम शास्त्र (व्यावहारिक शास्त्र) के अर्थ करने में केवल तर्क से प्रत्यावस्था (विरोध) करना ठीक नहीं। क्योंकि आगम (व्यवहारिक शास्त्र) और केवल पुरुष कल्पनामूलक तर्क प्रतिष्ठित नहीं होते। कल्पना निरंकुश होती है। जैसे कुछ से यत्नपूर्वक कल्पित तर्क दूसरे से आभास मात्र सिद्ध हो जाता है। उनसे कल्पित तर्क भी दूसरों से आभास दिखाये जाते हैं। अतएव तर्क का आश्रय ग्रहण नहीं करना चाहिये। कारण यह कि पुरुषों की बुद्धियां विभिन्न होती हैं। यदि किसी प्रसिद्ध कपिल महात्मा द्वारा अथवा किसी

---

१. भ० गीता २-४९।

२. ब्रह्मसूत्र २-१-११—शंकराचार्य भाष्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143
GUR-V
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अन्य महात्मा द्वारा प्रतिष्ठित बात है तो वह पूर्वोक्त दोष से अप्रतिष्ठित ही है। इस पर भी प्रतिष्ठित प्रमाण में कपिल, कणाद इत्यादि जैसे शास्त्र-प्रणेता में भी परस्पर विरोध दिखायी देता है। यह कहा जाता है कि हम दूसरे ढंग से अनुमान करें जिससे प्रतिष्ठित दोष न आये तो प्रतिष्ठित तर्क हो ही नहीं सकता।

इस प्रकार हिन्दुओं में शंकरपंथी मज़हबी व्यक्ति हैं। जब वे बुद्धि को अमान्य करते हैं तो किसी गुरु, किसी ग्रन्थ, किसी विद्वान् के वाक्यों को बिना बुद्धि से विचार किये मानने के लिये कहते हैं। यह वही बात है जो अंजील अथवा कुरान में ऊपर कही गयी है।

परन्तु यह सब हिन्दुओं की बात नहीं है। हिन्दू शास्त्रों में यह भी लिखा हैं—

मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रु वन्। को न ऋषिर्भविष्यतीति।
तेभ्य एतं तर्कमृषि प्रायच्छन्। मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढम्।
तस्माद्यदेव किं चानूचानोऽभ्यू हत्यार्ष तद्भवति ॥[1]

अर्थात्—ऋषियों के सुकृत लोक को उठ जाने (स्वर्गवास हो जाने) पर कौन हममें ऋषि होगा (अर्थात् वेदार्थ समझायेगा)? उन्होंने (देवताओं अर्थात् विद्वानों ने) कहा—तर्क (युक्ति-बुद्धि से विचारित बात) तुम्हारा ऋषि होगा।

इसका अर्थ है कि वेद जैसी प्रतिष्ठित पुस्तक का अर्थ लगाने में भी बुद्धि सहायक होती है। अतः हिन्दुओं में ऐसा मानने वाले लोग मज़हबीनहीं हो सकते।

इस पर भी एक बात मुसलमानों से हिन्दुओं में विलक्षण है। वह यह कि हिन्दू अपने मज़हबों को राज्य कार्य में दखल देने नहीं देते। इसी कारण हमारा दावा है कि यदि हिन्दू-पद्धति पर राज्य होगा तो वह मज़हबी राज्य नहीं होगा।

हिन्दू समुदाय में अनेक मज़हब होते हुए भी मज़हब-विहीन बहुत बड़ी संख्या में हैं। अतः हिन्दू राज्य मज़हबी राज्य नहीं हो सकता।

जहां मनुष्य की प्रवृत्ति बुद्धिगम्य होगी, वहां मज़हब अर्थात् अन्ध श्रद्धा किसी पर रह नहीं सकती।

Central Library
Gurukula Kangri (Deemed University) Haridwar
167977

# तृतीय अध्याय

## हिन्दू कोई मज़हब नहीं है—(२)

हिन्दू एक समुदाय है। इसमें अनेक मज़हब हैं। इस समुदाय में मज़हब-हीन लोग भी हैं। हमारे विचार में इस श्रेणी के मनुष्यों का हिन्दुओं में बाहुल्य है। यह हमने बताया है कि हिन्दू धर्मशास्त्र बुद्धि को पथ-प्रदर्शक मानते हैं। हिन्दुओं

१. निरुक्त १३-१२, भाष्य पं० भगवद्दत्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के विख्यात स्मृति ग्रन्थ मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों में 'धी' और 'विद्या' भी हैं। 'धी' का अर्थ है—बुद्धि और 'विद्या' का अर्थ है—ज्ञान। अर्थात् इनका प्रयोग करना धर्म के लक्षणों में है। यह हिन्दू धर्म की ही विशेषता है।

यही कारण है कि हिन्दुस्तान के राज्यों में जब तक का इतिहास मिलता है, राज्य कार्य में मज़हब का समावेश नहीं मिलता। इस परम्परा में भेद—जैन और बौद्धों के काल में पड़ा था। अन्यथा मज़हब और राज्य असम्बन्धित ही रहे हैं।

हमने मज़हब की व्याख्या में कहा है कि वे विचार अथवा वे व्यवहार जो बिना बुद्धि से विचार किये, केवल मात्र श्रद्धावश स्वीकार किये जायें, वे मज़हबी होते हैं। ये कार्य, श्रद्धायुक्त विचार से प्रेरित होते हुए भी बाहरी लक्षणों से प्रदर्शित होते हैं। यथा—तिलक लगाना, चोटी रखना, यज्ञोपवीत धारण करना, सुन्नत करवाना, पंच कक्के, सलीब धारण करना इत्यादि। ये मजहबी चिह्न जब भी किसी अर्थयुक्त विचार से सम्बन्धित होंगे और किसी बुद्धियुक्त उद्देश्य को प्रकट करेंगे, वे मज़हबी लक्षण न रहकर धर्म का लक्षण बन जायेंगे।

हम समझते हैं कि यही कारण है कि हिन्दुओं में, विशेष रूप से नगरों में रहने वाले हिन्दुओं में चोटी और यज्ञोपवीत विलुप्त प्रायः हो गये हैं। यह इस कारण कि इन चिह्नों का सम्बन्ध अब किसी बुद्धिगम्य व्यवहार से नहीं रहा। न तो यज्ञोपवीत किसी स्कूल-कालेज में प्रवेश का लक्षण रहा है, न ही सिर पर चोटी रखना किसी कर्त्तव्य पालन से सम्बन्धित रहा है।

इसका अभिप्राय यह नहीं कि हिन्दुओं के लड़के अब पढ़ते नहीं अथवा धर्म-कर्म करते नहीं। वे यदि धर्म-कार्य से विचलित हो रहे हैं तो किसी अन्य कारण से हो रहे हैं, इस कारण नहीं हो रहे कि वे हिन्दू नहीं रहे। वास्तव में इन चिह्नों (यज्ञोपवीत और चोटी) का सम्बन्ध उन कर्त्तव्यों और उद्देश्यों से नहीं रहा, जिनसे कभी यह निश्चय किया गया था। ये तो केवल लक्षण थे किसी व्यवहार अथवा कर्त्तव्य के। वे व्यवहार और कर्त्तव्य नहीं रहे, अतः चिह्न अनायास ही विलुप्त हो गये हैं।

ये चिह्न मज़हबी लक्षण थे। हिन्दुओं में मज़हब परिवर्तन हुआ है और चिह्न का स्वतः लोप हो गया है। परन्तु हिन्दू का लेबल तो अब भी है। हमारा कहना है कि हिन्दुओं में मज़हब बदलते हैं। यही कारण है कि मज़हबी चिह्न बदलते रहते हैं अथवा विलुप्त होते रहते हैं। परन्तु हिन्दुत्व रहता है। वह मज़हब से सर्वथा भिन्न है।

इन चिह्नों में खान-पान, छूआछूत, धोती-कुर्त्ता, विवाह के रीति-रिवाज और अन्य सामाजिक व्यवहार सम्मिलित हैं। ये चिह्न पंजाब, मद्रास, राजस्थान गुजरात, उत्तरप्रदेश, बंगाल, बिहार, कर्नाटक इत्यादि प्रदेशों में भिन्न-भिन्न थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


और अब बदलते भी जा रहे हैं। इस पर भी ये सब लोग देश के भिन्न-भिन्न भागों में रहते हुए भी हिन्दू हैं। यही कारण है कि हिन्दू कोड बन जाने पर भी, उसको स्वीकार करने वाले भी हिन्दू हैं।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि मज़हबी चिह्न हिन्दू होने के लक्षण नहीं हैं। हिन्दुत्व इनसे पृथक् है। यह मज़हब नहीं। यह मज़हबी चिह्न भी नहीं।

आजकल के अंग्रेजी पढ़े-लिखे, अंग्रेजी समाचार-पत्र पढ़ने वाले और ईसाई तथा मुसलमानी परम्पराओं से प्रभावित लोग, इन चिह्नों को हिन्दू का अंग समझ यह कूक लगाते देखे जाते हैं कि आज देश में हिन्दू धर्म का ह्रास अथवा लोप हो रहा है अथवा हो गया है। हमारा कहना है कि हिन्दू समुदाय के कुछ एक मज़हबी चिह्नों का लोप अवश्य हुआ है, क्योंकि वे हिन्दू मज़हब, जिनके वे लक्षण थे, नहीं रहे अथवा वे मिट रहे हैं।

आज से पचास वर्ष पहले तिलक, छाप, माला इत्यादि मज़हबी चिह्नों का नगरों और ग्रामों में दर्शन प्रायः होता था। ये चिह्न अब दिखाई नहीं देते। हम इसका अर्थ केवल यह समझते हैं कि हिन्दू समुदाय में कुछ एक मज़हबों में परिवर्तन हो रहा है। परन्तु हिन्दू समुदाय तो अभी तक ज्यों का त्यों है। पिछली जनगणना में भी हिन्दू समुदाय की भारत देश में संख्या पैंतालीस करोड़ के लगभग थी। यह ठीक है कि मुसलमान और ईसाईयों की संख्या बढ़ी है, परन्तु इसका हमारे कथन से सम्बन्ध नहीं। हमारा कहना है कि हिन्दू समुदाय में कुछ एक मज़हबी चिह्न के विलुप्त होने पर भी हिन्दू समुदाय स्थिर है; उसका अस्तित्व है।

यहां हम एक बात की विवेचना और कर देना चाहते हैं। डाक्टर अम्बेडकर ने अछूतों को यह कहा था कि अछूत बौद्ध-मत स्वीकार कर लें। उनके कहने पर कई अछूतों ने बौद्ध मत स्वीकार किया भी था। डाक्टर साहब यह समझते थे और ठीक समझते थे कि हिन्दू समुदाय में, जो अछूतों के साथ घृणा करने वाले मज़हब थे, उनसे अछूतों को वह बाहर हो जाने को कह रहे हैं। यह ठीक ही था।

मध्यकालीन भारत में शंकरपंथियों ने जो मत चलाया था, जिसे वे वैदिकमत कहते थे, उससे डाक्टर अम्बेदकर अछूतों को बाहर करना चाहते थे। परन्तु इसका अभिप्राय प्रायः अछूतों ने और बहुत से हिन्दुओं ने यह समझा कि डाक्टर अम्बेदकर हिन्दू समुदाय से उन अछूतों को बाहर होने के लिये कह रहे हैं। वस्तुतः इसका यह अर्थ नहीं था। हम समझते हैं कि शंकर इत्यादि लोगों ने हिन्दू समुदाय में एक मत (मज़हब) चलाया था। उस मत का आभास शंकराचार्य ने अपने वेदान्त भाष्य सूत्र (१-३-२८) में दिया है। स्वामी शंकराचार्य कहते हैं कि यदि शूद्र वेद सुनले तो उसका शरीर काट देना चाहिये और उसके कान में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सीसा गरम कर डाल देना चाहिये।

परन्तु यह हिन्दू समुदाय का मत नहीं था। यह हिन्दुओं के एक सम्प्रदाय (मज़हब) का मत था। हिन्दू समुदाय में तो यह भी कहा जाता है—

जात्त-पात पूछे नहीं कोई,
हरि को भजे सो हरि का होई।।

हिन्दू सम्प्रदाय में एक महाप्रभु चैतन्य हुए हैं जो अछूत कहे जाने वालों के साथ बैठकर भोजन करने के लिये सत्याग्रह कर बैठे थे। और फिर स्वामी दयानन्द भी हुए हैं जो कहते थे कि शंकराचार्य का (मज़हब) अज्ञानतापूर्ण था। वेद मत तो यह है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि अनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याँ् शूद्राय चार्याय च। स्वाय चारणाय।[1]

अर्थात्—यह जो मेरी कल्याणमयी वेदवाणी है, वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं चण्डालों, सबके लिये है।

अतः, हमने इस अध्याय में यह बताया है कि हिन्दू एक समुदाय है और उसमें अनेक मत (मज़हब) हैं। वे मत परस्पर विरोधी भी हैं। इस पर भी वे, मतों में विरोध होने पर झगड़ते नहीं। यह बात इस्लाम और ईसाइयों में नहीं है। वे बिना विचार किये अपने मत के पैगम्बर की बात मानने पर विवश हैं और फिर उनके पैगम्बर की बात, जैसी वे समझते हैं, कोई न माने तो उसे मार डालने योग्य समझते हैं।

इस्लाम की इसी प्रवृत्ति के अधीन इस्लाम के बाहर वालों के साथ, उनके व्यवहार की बात छोड़ भी दी जाये तो भी उनके अपने मज़हब के भीतर वालों में किंचित् मात्र मज़हबी बातों पर मतभेद होने पर रक्त की नदियां बहती देखी जाती हैं।

अभी कुछ वर्ष हुए पाकिस्तान में अहमदियों का कत्ले-आम हो गया था, केवल इसलिये कि अहमदी यह मानते हैं कि हज़रत मुहम्मद के उपरान्त उनके मज़हब के बानी भी खुदा के पैगम्बर हैं।

ऐसी बात हिन्दुओं में नहीं है। इस प्रकार की घटना हिन्दू समुदाय के इतिहास में नहीं मिलतीं।

अतः, हमारा यह कहना है कि हिन्दू स्वयं कोई मज़हब नहीं है। यह एक समुदाय है। इस समुदाय में कई मत हैं। कुछ मत ऐसे भी हैं जो बुद्धि को अपना पथ-प्रदर्शक नहीं मानते और ऐसे मत भी हैं, जो बुद्धि को पथ-प्रदर्शक मानते हैं।

---

१. यजुः २६-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इस पर भी यह मतभेद वैमनस्य का कारण नहीं है। न ही इसका हिन्दू राज्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप है।

यदि हिन्दू एक मज़हब नहीं, समाज नहीं, तो यह क्या है? हमारा कहना है कि यह एक राष्ट्र है। राष्ट्र का अर्थ है——वह जनसमूह जो समान संस्कृति रखता हुआ देश का शासक हो। भारत की वर्तमान स्थिति में देश भारत है और राष्ट्र हिन्दू है। कठिनाई यह है कि अंग्रेज़ी शिक्षा से दूषित हुई मानसिक अवस्था के कारण हिन्दू राष्ट्र ने अपने में कुछ अराष्ट्रवादी तत्त्व घुस आने दिये हैं।

राष्ट्र को अंग्रेजी में 'स्टेट' कहते हैं। परन्तु स्टेट के अन्य भी बहुत से अर्थ हैं। इस कारण यदि राष्ट्र के लिये स्टेट शब्द का प्रयोग करना हो तो यह आवश्यक है कि यह स्पष्ट किया जाना चाहिये कि राष्ट्र किन अर्थों में स्टेट है।

Webster's International Dict. (Ed. 1967) में 'स्टेट' शब्द के दस अर्थ दिये हैं। उन दस अर्थों में तीन अर्थ ही हैं, जिनका सम्बन्ध देश, प्रजा और राज्य से है। इन तीन में भी 'स्टेट' शब्द का अर्थ ५-ए ही राष्ट्र का अभिप्राय प्रकट करता है। वह अर्थ इस प्रकार है—

A body of people permanently occupying a definite territory and politically organised under s sovereign government almost entirely free from external control and possessing coercive power to maintain order within the community.

अर्थात्—एक जनसमूह, जो एक भूमिखण्ड (देश) में स्थाई रूप से रहता हो और राजनीतिक विचार से एक संगठित स्व-सत्ता सम्पन्न शासक हो और पूर्णतः विदेशीय नियंत्रण से मुक्त हो तथा अपने समुदाय में नियंत्रण रखने की सामर्थ्य रखता हो।

भारत में ऐसा समुदाय हिन्दू है। ऐसे समुदाय की एक व्याख्या वेद में की गयी है—

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽ इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥[1]

संक्षेप में राष्ट्र के आवश्यक अंग हैं—

(१) परमात्मा की मान्यता;

१. यजुः २२-२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



(२) वेद (सब प्रकार के) ज्ञान से युक्त विद्वानों की प्रतिष्ठा;
(३) देश की रक्षा में संलग्न शूरवीर;
(४) उत्तम और प्रचुर मात्रा में शस्त्रास्त्र;
(५) शूरवीर, बुद्धिमान् और साहसी सेनाध्यक्ष जो शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकें;
(६) राजनीति के ज्ञाता ओजस्वी विद्वान् शासक;
(७) दूध देने वाली गौएं;
(८) कुशल पुत्र-पौत्रों की जननी स्त्रियां;
(९) प्रचुर मात्रा में बोझा ढोने वाले वाहन;
(१०) स्वस्थ योगक्षेमयुक्त जीवन।

वेद में वर्णित इन बातों में मज़हब तथा समाज के नियमों अथवा व्यक्ति के विषय में कुछ नहीं कहा। न तो यह बताया है कि कोई बड़ा है अथवा कोई छोटा है, न ही यह बताया है कि कोई छूत है और कोई अछूत। ये बातें राष्ट्र के लक्षणों में नहीं हैं। एक देश में बसे उक्त दस लक्षण रखते हुए लोग राष्ट्र हैं।

कुछ लोग आपत्ति कर सकते हैं उपर्युक्त प्रथम दो लक्षणों पर। मंत्र में ब्रह्मण (परमात्मा) शब्द है। अभिप्राय यह है कि कोई महान् शक्तिशाली, बुद्धिमान, ज्ञानवान् इस जगत् का संचालन करने वाला मानना होगा। उसको गौड, खुदा, जहोवा अथवा विष्णु, ईश्वर कुछ भी नाम दें। उसे प्रकृति (nature) अथवा मुद्गल नाम भी दिया जा सकता है। जब तक यह मानें कि सब प्राणियों पर वह एक अटल नियम से नियंत्रण रखता है, तब तक उसका कुछ भी नाम रखा जाये, कुछ अन्तर नहीं पड़ता। इसमें परमात्मा का रंग-रूप, डाढ़ी-मूंछ, बैठने अथवा रहने के स्थान के विषप में कुछ नहीं कहा। हम उस परमात्मा को भी मान सकते हैं जो बाइबल में वर्णित है, तुरेत में अथवा कुरान में वर्णित है। जब तक यह माना जाता है कि वह सबके साथ न्याय करता है, तब तक कोई अन्तर नहीं पड़ता।

राष्ट्र के उक्त लक्षणों में यह नहीं कहा कि राजा परमात्मा का स्थानापन्न है। न ही यह कहा है कि परमात्मा मुसलमान है अथवा ईसाई है। केवल यह कहा है कि राष्ट्र में एक सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, अनादि, न्यायकर्त्ता शक्ति को स्वीकार करना पड़ेगा, नहीं तो राज्य सत्ता से मदहोश राजा, प्रधान अथवा प्राईम-मिनिस्टर अनर्थ करने लगेंगे।

जो लोग बौद्ध और जैनियों की भाँति परमात्मा को नहीं मानते, उनको भी यह तो मानना ही होगा कि बड़े से बड़े और शक्तिशाली से शक्तिशाली व्यक्ति को भी दण्ड देने की सामर्थ्य किसी एक में है। वह प्रकृति के नियम भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कहे जा सकते हैं। अतः उक्त सूची में परमात्मा की मान्यता निरीह तथा अति उपकारी है।

राष्ट्र की मान्यताओं में दूसरा स्थान है वेद का। वेद का अर्थ ज्ञान है। ज्ञान की महिमा स्वीकार होनी ही चाहिये। वेद ग्रन्थ—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व ज्ञान की पुस्तकें हैं अथवा नहीं, इस विषय को समय-समय के विद्वानों पर छोड़ दिया जाये। इस पर भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि ज्ञान की महिमा हिन्दू राष्ट्र में हो। अज्ञानियों का पद ज्ञानियों से नीचे हो। ज्ञानवान् ही ज्ञानी है, बहुमत प्राप्त व्यक्ति ज्ञानवान् नहीं भी हो सकते।

अतः ऊपर लिखे अंगों वाला समुदाय हिन्दू राष्ट्र है।

---

# चतुर्थ-अध्याय

## हिन्दू राष्ट्र में मजहब का विचार नहीं—

मजहबी बातों से अर्थात् मस्जिद, गिरजाघर, मन्दिर, गुरुद्वारों से तथा मज़हबी लक्षण जैसे सुन्नत, सलीब, तिलक, चोटी, केश इत्यादि से राष्ट्र की बातों का कोई सम्बन्ध नहीं।

परमात्मा के अस्तित्व को मानना अथवा ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करना मज़हबी बातें नहीं हैं। न ही आवश्यकता है अपने मज़हब की बात को किसी दूसरे मज़हब से छुपकाकर रखने की। यह तो ठीक है कि कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे के मज़हब की निन्दा अथवा हँसी न उड़ाये, परन्तु किसी एक मज़हब की बात दूसरा जान नहीं सकता, यह अयुक्ति-संगत है। चोरी-छिप कर कोई बात करना अपराध है। साथ ही सभ्य भाषा में एक-दूसरे पर विचार व्यक्त करना क्षम्य है। सभ्य भाषा में विचार-विनिमय तथा आलोचना ज्ञान का स्रोत हैं। इसे मना नहीं किया जा सकता। हां, निन्दनीय शब्दों का एक-दूसरे के लिये तयोग वर्जित होना चाहिये। सभ्य-सौम्य भाषा में मजहबी बातों पर विचार गोष्ठियां होनी ही चाहियें। किसी मज़हब को मानने वालों की संख्या में वृद्धि भी किसी प्रकार वर्जित नहीं हो सकती। यही हिन्दू जीवन मीमांसा का आधार है। विभिन्न विषयों पर वाद-विवाद अर्थात् शास्त्रार्थ अनादि काल से होते आये हैं। मज़हबी झगड़े तो परस्पर विरोधी व्यवहार पर होते हैं। व्यवहार से विरोध राजनियम से वर्जित होता है।

हम कुछ एक उदाहरण देना चाहते हैं। कुर्बानी की गाय का जलूस निकालना एक व्यवहार है। यदि किसी मज़हब को यह पसन्द न हो तो इसकी स्वीकृति नहीं दी जा सकती। किसी को उठ-बैठकर नमाज़ पढ़ते देख हंसी करना व्यवहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। यह भी वर्जित हो। किसी के देवी-देवता के स्वरूप पर टीका-टिप्पणी भी एक व्यवहार है। यह भी वर्जित हो। हाँ, परमात्मा के स्वरूप पर विवेचना, वाद-विवाद इत्यादि व्यवहार नहीं हैं। ये विचार हैं। इस कारण इनका प्रकटीकरण सभ्य-सुशील भाषा में वर्जित नहीं हो सकता। कोई यह प्रमाण देकर अथवा युक्ति करके कह सकता है कि हिन्दुओं के पूर्वज गोमांस खाते थे। यह सिद्ध करने का यत्न वर्जित नहीं है। परन्तु किसी को उसकी इच्छा के बिना गोमाँस खिलाना वर्जित होना ही चाहिये।

हिन्दू समाज में जगन्नाथ जैसे कुरूप देवी-देवता भी हैं, परन्तु हिन्दू समाज इसकी अथवा इसके मानने वालों की निन्दा नहीं करता। अष्टभुजी देवी किसी की दृष्टि में कुरूप हो सकती है, परन्तु उसे निन्दनीय कहना अप-व्यवहार है और यह वर्जित हो।

इसी प्रकार यहूदी काफिर हैं अथवा मुहम्मद साहब पर ईमान न लाने वाले काफ़िर हैं, कहना वर्जित नहीं। परन्तु काफिर होने से कोई मारे जाने योग्य है अथवा घृणा का पात्र है, यह एक व्यवहार से संबंधित होने से वर्जित हो।

हिन्दू राष्ट्र की कल्पना में विचार-विनिमय और विचार प्रसार की खुली छूट है, परन्तु परस्पर असभ्य व्यवहार पर प्रतिबन्ध है।

उदाहरण के रूप में कोई मान सकता है कि मानव कर्मों पर नियंत्रण रखने वाली शक्ति परमात्मा है। इसके अस्तित्व और इसकी आवश्यकता पर युक्ति हो सकती है, परन्तु यह शक्ति किन-किन लक्षणों वाली है, इस पर मतभेद हो सकता है। यह मतभेद झगड़े का विषय नहीं।

इसी प्रकार राष्ट्र में सेना भूमि पर चलने वाली हो अथवा आकाश में उड़ने वाली हो, इस पर मतभेद हो सकता है, परन्तु सेना न हो, यह अराष्ट्रीयता है।

यह है हिन्दू राष्ट्रवाद। मज़हब व्यक्तिगत बातें हैं। पति-पत्नी, बहन-भाई, माता-पुत्र का मज़हब भिन्न-भिन्न हो सकता है, परन्तु सबकी राष्ट्रीयता एक है अर्थात् उन बातों में, जिनका उल्लेख हमने राष्ट्र के लक्षणों से किया है, मतभेद नहीं हो सकता। राष्ट्र की मूल बातों का व्यवहार में विरोध नहीं हो सकता। विचार-भेद व्यवहार में नहीं हो सकता।

राष्ट्र की सब बातें राज्यान्तर्गत नहीं हैं। राज्य और व्यक्ति का क्या सम्बन्ध है, यह हम आगे यथा स्थान बताने का यत्न करेंगे। जहां तक राष्ट्र का सम्बन्ध है, केवल ऊपर लिखी बातें ही इसके अन्तर्गत हैं। उनका मज़हब से सम्बन्ध नहीं है।

यदि भारत देश में हिन्दू राष्ट्र हो तो लोगों में मज़हबों की भिन्नता से परस्पर विरोध नहीं होगा। हां, यदि राष्ट्र की बातें मानते हुए भी मज़हब परस्पर लड़ने लगें तो फिर यह शासन का उत्तरदायित्व हो जाता है कि शांति बनाये रखे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अतः राज्य और राष्ट्र में भी अन्तर है।

राष्ट्र, जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया है, प्राकृतिक विरोधों से तथा विदेशी आक्रान्ताओं से देश और देश के रहने वालों की रक्षा के लिये संगठन का नाम है।

जो लोग भारत का इतिहास अशोक के काल से आरम्भ हुआ समझते हैं, वे हिन्दू राष्ट्र की उक्त बातों की महिमा को नहीं समझ सकते। वास्तव में भारत का इतिहास उससे बहुत पहले से है। यह अशोक ही था जिसने सर्वप्रथम राष्ट्र और राज्य में भेद मिटा दिया था।

सिकन्दर के काल की बात ही लें। यह अशोक के युग के पीछे की बात है। यद्यपि पाश्चात्य इतिहास लेखक सिकन्दर को अशोक से पहले हुआ मानते हैं। पुराणों में कहे इतिहास से अशोक १४५६ ईसा पूर्व में गद्दी पर बैठा था और सिकन्दर ने सन् ३०० ईसवी में भारत पर आक्रमण किया था। सिकन्दर युरोपीय इतिहास के अनुसार व्यास नदी से आगे नहीं बढ़ सका। भारतीय इतिहास और ईरानी लेखकों के अनुसार सिकन्दर जेहलम के पश्चिमी तट से ही लौट गया था।

वह आगे क्यों नहीं बढ़ सका था? इसमें कारण यह था कि उस समय भारत में छोटे-छोटे राज्य होते हुए भी राष्ट्र एक था और राष्ट्र-भावना बहुत प्रबल थी। जन-जन के मन में देश की विदेशी आक्रान्ताओं से रक्षा में रुचि थी और सिकन्दर का जेहलम के किनारे पहुंचते-पहुंचते ही उत्साह भंग हो गया था। उसकी सेना हतोत्साह हो अपने देश से बगावत करने के लिये तैयार हो गयी थी।

अशोक से पूर्व तो किसी बाहरी शक्ति का भारत पर आक्रमण करने का साहस भी नहीं हुआ था। यह राष्ट्र की भावना का ही चमत्कार था।

यदि ध्यानपूर्वक पढ़ा जाये तो पता चलेगा कि राष्ट्र के जो लक्षण वेद में वर्णित हैं, वे केवल दो विचारों को लेकर किये गये हैं। वे दो विचार हैं विदेशियों से राष्ट्र, राष्ट्र की जनता और देश की रक्षा तथा प्राकृतिक विरोध से रक्षा।

राष्ट्र का मज़हब से इतना ही सम्बन्ध है जितना मज़हब को उसकी सीमाओं के भीतर रखने और विदेशी आक्रान्ताओं को देश से बाहर रखने में है।

---

# पंचम-अध्याय

## वर्तमान भारत और हिन्दू राष्ट्र

इस समय देश में हिन्दू राष्ट्र नहीं है। यह इस कारण नहीं कि देश का नाम हिन्दुस्तान नहीं भारत है।

सन् १९४७ से पूर्व देश का नाम हिन्दुस्तान था। तब भी देश में राष्ट्र हिन्दू नहीं था। आज भी देश में राष्ट्र हिन्दू नहीं है। यह राष्ट्र के साथ हिन्दू शब्द न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



होने के कारण नहीं है, वरन् उस भावना के अभाव के कारण है जो राष्ट्र के लिये आवश्यक है।

आइये, राष्ट्र के लक्षणों को एक-एक कर लें और देखें कि ब्रिटिश काल के हिन्दुस्तान में और आज कांग्रेस के काल के भारत में वे लक्षण कहां तक मिलते हैं।

(१) राष्ट्र के लक्षणों में प्रथम लक्षण है—'ब्रह्मण' अर्थात् किसी महान व्यापक शक्ति के अस्तित्व को स्वीकार करना जो मनुष्यों के जीवन से ऊपर हो और उच्छृंखल, धूर्तों, बलशालियों तथा गुट्टबाजों को सन्मार्ग दिखाने वाली हो। आस्तिक-जन इसे परमात्मा कहते हैं। परमात्मा को न मानने वाले उसे प्रकृति कहते हैं। कुछ लोग इसे कर्मफल कहते हैं। कुछ इसे जन-जन की पुकार कहते हैं। इस विषय में एक वेद मंत्र में इस प्रकार कहा है—

यत् पांचजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत।
अस्तृणाद् बर्हणा विपोऽर्यो मानस्य स क्षयः॥

[ऋ० ८-६३-७]

मन्त्रार्थ—जब प्रजा के पांचों वर्ग पूर्ण बल से घोषणा करते हैं, तब इन्द्र [परमात्मा] अपने महत्त्व से सबके मान का स्थान हो जाता है। अर्थात् परमात्मा उनकी बात पूरी कर देता है।

यहां पांचजना से अभिप्राय है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और वर्णेतर (चण्डाल इत्यादि वर्ग)। जब सब लोग एक मत होकर कुछ मांग करें तो परमात्मा उनकी बात पूरी कर देता है।

परमात्मा (ब्रह्मण) के यही व्यापक अर्थ हैं। जो लोग किसी ऐसी शक्ति के अस्तित्व को नहीं मानते, वे कभी राज्य में शक्ति सम्पन्न हो जायें तो अनर्थ ही करते हैं। वर्तमान युग के इतिहास में मुसोलीनि, हिटलर इत्यादि ऐसे ही लोग थे। इन सब का अन्त बुरा हुआ। यह उस सर्वव्यापक अजर, अमर शक्ति की करनी से ही हुआ था। वह शक्ति जन-जन में साहस भर कर तानाशाही का तख्ता उलटा देती है।

यह है अर्थ...ब्रह्मण का। आज भारत में ऐसी शक्ति को मानने वाला कोई दिखाई नहीं देता। विशेष रूप में जो लोग राज्य-सत्ता प्राप्त हैं, वे मन में भले ही कुछ समझते हों, व्यवहार में और वचन में वे परमात्मा अर्थात् अपने से ऊपर किसी शक्ति के अस्तित्व को नहीं मानते।

जब से स्वराज्य हुआ है, तब से ही देश में 'ब्रह्मण' का विचार किसी के मन में नहीं रहा। यह ठीक है कि महात्मा गांधी राम धुन का नित्य उच्चारण करते थे, परन्तु आचरण में वे भी अनीश्वरवादी ही थे। ईश्वर पर विश्वास का अभिप्राय यह नहीं कि बलशाली की बात को मान कर, उसके आदेश का पालन करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लगना।

सन् १९२२ में गांधी जी ने खिलाफत संस्था के लिये पूर्ण भारत देश की भलाई को निछावर कर दिया था। उस समय गांधी जी भारत के बेताज बादशाह माने जाते थे। देश का सब सज्ञान वर्ग उन्हें अपना नेता समझता था। इन महानुभाव ने मुसलमानों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये टर्की की जनता की इच्छा के विपरीत, भारत के तथा दुनियां भर की गैर-मुसलमान जनता के हितों के विपरीत हिन्दुस्तान के भाग्य की, खलीफा की गद्दी के लिये बाजी लगा दी थी।

सत्याग्रह असफल हुआ। खिलाफत के अनुयाइयों ने देश में हिन्दुओं के रक्त की नदियां बहानी आरम्भ कर दीं। परन्तु इन अपने को ईश्वर-भक्त कहने वाले को समझ नहीं आयी कि वह अन्याय का पक्ष ले रहे हैं और भविष्य में वह ऐसा नहीं करेंगे।

यह सन् १९२२ की बात थी और गांधी जी ने सन् १९४७ में भी उस खिलाफत के अनुयाईयों के आगे घुटने टेके थे। यदि गांधी जी अपने असहयोग आन्दोलन की असफलता के उपरान्त राजनीति से पीछे हट जाते अथवा आततताईयों का विरोध और उत्पीड़ितों को संगठित करने में लग जाते तो देश का चित्र स्वराज्य प्राप्ति के समय वह न होता जो अब हुआ है।

यह कहे जाने वाले रामभक्त विरोधी तत्त्वों की ही सहायता करते रहे और मरने से पूर्व अपने जीवन की बाज़ी देश की इच्छा के विरुद्ध उन्हीं (पाकिस्तानियों) को पचपन करोड़ रुपया दिलाने के लिये लगा बैठे।

हम समझते हैं कि देश में राष्ट्र का वह लक्षण, जिसे ऊपर कहा गया है, देश में न ब्रिटिश काल में था, न अब स्वराज्य प्राप्ति के उपरान्त दिखाई देता है।

अतएव राष्ट्र का यह मुख्य अंग सत्ताधारियों में नहीं है। सन् १९३७ के उपरान्त तो ब्रह्मण पर आस्था एक मजहबी बात मान ली गयी है।

परमात्मा पर विश्वास मज़हब नहीं है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है। जैसे पृथिवी गोल है। पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती है, सूर्य नहीं। जैसे यह और इसी प्रकार के वैज्ञानिक तथ्य हैं वैसे ही परमात्मा एक वैज्ञानिक तथ्य है।

हम इसे एक विख्यात वैज्ञानिक न्यूटन के शब्दों में इस प्रकार मानते हैं—

Every particle of matter remains statoinery or moves in a straight line with a constant speed, unless opposed by some outside force.

अभिप्राय यह है कि प्रकृति का कोई भी अंश यदि खड़ा है तो खड़ा ही रहेगा और यदि चलता है तो सीधी रेख में और स्थिर गति से चलता ही रहेगा, जब तक किसी बाहिरी शक्ति से रोका न जाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह है सिद्धान्त, जिससे सिद्ध होता है कि पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि से भी प्रबल, बहुत प्रबल, एक शक्ति इस विश्व में है जो इस अन्तरिक्ष के प्रकृति के इन बड़े-बड़े खण्डों को चलाने वाली है। वह परमात्मा है।

जो न्यूटन के इस उक्त वाद को मान कर भी परमात्मा अर्थात् इस विश्व में किसी महान् सर्वव्यापक ज्ञानवान् शक्ति को नहीं मानते, वे वैसे ही अनपढ़ हैं, जैसे पृथिवी को चपटी मानने अथवा सूर्य को पृथिवी के चारों ओर घूमने वाला मानने वाले हैं।

अतः हमारा मत है कि इस समय भारत में हिन्दू राष्ट्र का सर्वप्रथम लक्षण ही नहीं माना जा रहा। राज्य में परमात्मा को एक काल्पनिक बात (myth) मानी जाती है।

यह पूछा जा सकता है कि परमात्मा को मानने-न-मानने से शासन (राज्य) कार्य में क्या अन्तर पड़ सकता है? परन्तु हम शासन की बात नहीं कर रहे। हम तो राष्ट्र की बात कर रहे हैं।

दोष यह हुआ है कि शासन (राज्य) ने राष्ट्र निर्माण के सब सूत्रों को अपने हाथ में ले रखा है। सब से प्रमुख सूत्र है राज्य के बालक-बालिकाओं की शिक्षा और यह शिक्षा ही नास्तिक्य को लेकर चली है। वस्तुतः यह राज्य का अधिकार नहीं कि राष्ट्र के बालक-बालिकाओं की शिक्षा में अपनी टांग अड़ाये।

देश में शिक्षा का प्रबन्ध कैसा हो, यह हम इसी पुस्तक में आगे चल कर लिखेंगे। यहां हम इतना बताना चाहते हैं कि टैक्निकल ट्रेनिंग शिक्षा नहीं होती। तकनीकी शिक्षा तो इन्द्रियों को सिधाने का विधि है। शिक्षा है—मन, बुद्धि और जीवात्मा को ठीक मार्ग पर लाने का विधि-विधान।

शिक्षा को तकनीकी शिक्षा तक सीमित करने का ही प्रभाव है कि पूर्ण राष्ट्र, देश में रहने वाला जनसमूह राष्ट्र के प्रथम लक्षण को ही अस्वीकार कर रहा है।

अब राष्ट्र के दूसरे लक्षण पर विचार करें। मंत्र में शब्द है—ब्रह्मवर्चसी जायताम्। ब्रह्म का अर्थ वेद अर्थात् ज्ञान है। ज्ञान के प्रकाश से ओत-प्रोत अर्थात् ज्ञानवान् व्यक्ति प्रचुर संख्या में राष्ट्र का अंग हों।

कोई भी सही दिमाग़ व्यक्ति मतदाताओं के बहुमत को ज्ञान की पहिचान नहीं कह सकता।

इसी प्रकार मंत्र में राष्ट्र का तीसरा अंग कहा है—'राष्ट्रे राजन्यः शूर इषसे इति व्याधि जायताम्।' शूरवीर शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित शासक निर्माण हों। यह भी बहुमत का विषय नहीं है।

इसी प्रकार राष्ट्र के दसों अंग जातीय निर्माण-कार्य करने वाले घटक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्थितियां निर्माण करने के लिये हैं। ऐसे जनसमूह को राष्ट्र कहते हैं।

इसमें मज़हब जो विशेष रूप-रंग, शरीर, चिह्न अथवा उठने-बैठने, चलने-फिरने आदि का ढंग है, कहीं नहीं है। मज़हब प्रत्येक व्यक्ति का भिन्न-भिन्न हो सकता है।

जो सांझी बातें हैं, वे हैं देश, देश की सुरक्षा, प्राकृतिक दुर्घटनाओं से देश की रक्षा के उपाय और साधन तथा उस जनसमूह पर ईश्वर नियंत्रण की भावना।

मज़हब है—पूजा विधि, पूजा स्थान, इष्टदेव की उपासना और इनको प्रकट करने के लिये शरीर, वस्त्रादिक पर विशेष चिह्न अथवा कुछ विचार जो सार्वजनिक व्यवहार से अतिरिक्त हैं।

अतः वैदिक राष्ट्र अर्थात् हिन्दू राष्ट्र मज़हब से पृथक् कल्पना है। इसके अन्तर्गत किसी देश अर्थात् भूमि खण्ड पर रहने वाले जनसमूह की बाहिरी लोगों और प्राकृतिक प्रकोपों से रक्षा के उपाय हैं। ये मज़हबी बातें नहीं हैं।

---

# षष्ठ-अध्याय

## राज्य और राष्ट्र

राष्ट्र और राज्य में अन्तर है। राज्य को हिन्दू राजनीति में दण्ड कहा है अर्थात् उच्छृंखल व्यक्तियों को ठीक मार्ग पर रखने के लिये डण्डा। राज्य का मुख्याधिकारी—राजा, प्रधान अथवा भारत के वर्तमान संविधान के अनुसार प्रधानमंत्री कहा जा सकता है।

राजा शब्द में पारिवारिक परम्परा की गध आती है। अभिप्राय यह कि राजा की सन्तान ही राजा हो। प्रधान तथा प्रधानमंत्री शब्द में निर्वाचित शासक की गंध आती है। इस स्थान पर हम दोनों विधि-विधानों के गुण-दोष का वर्णन नहीं करना चाहते। इस पर भी यह विचारणीय तो है ही कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू के उपरान्त उनकी पुत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी का प्रधानमंत्री बनना और इन्दिरा गांधी के उपरान्त संजय गांधी को इस पद के लिये आगे लाने का प्रयास और फिर उसकी मृत्यु के उपरान्त राजीव अथवा मेनका की चर्चा का अर्थ क्या है?

सन् १९४६ में श्री जवाहरलाल जी गांधी जी के हठ से प्रधानमंत्री बने थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


परन्तु पीछे सन् १९५२, १९५७, १९६२ में तो श्री जवाहरलाल जनता के द्वारा निर्वाचित देश के शासक थे। देश की अवस्था सन् १९६४ तक, जब तक नेहरू जीवित रहे, किसी प्रकार भी सुखकारक नहीं रही है। इस अवधि (सन् १९४७-६४) का देश का चित्र निम्न बातों से स्पष्ट होता है—

(१) महंगाई में वृद्धि आय में वृद्धि से तीन-चार गुणा अधिक हुई थी। रुपये का मूल्य सौ पैसे से गिर कर तीस-पैंतीस पैसे हो गया था।

तकनीकी शब्दों का जाल छोड़ कर सरल भाषा में बात कहें तो यह इस प्रकार है कि एक सामान्य पढ़े-लिखे युवक का वेतन ५० रुपये मासिक से बढ़ कर १६० रुपये हो गया था। परन्तु दूध बारह पैसे सेर से बढ़ कर दो रुपया सेर हो गया था। चीनी सात-आठ आने सेर से अढ़ाई रुपये सेर हो गयी थी। पापलीन सात-आठ आने ग़ज से बढ़कर साढ़े तीन रुपये ग़ज हो गयी थी।

दूसरे शब्दों में एक पढ़ा-लिखा युवक सन् १९६४ में सन् १९४७ से लगभग आधी कीमत का रह गया था। यही बात एक मज़दूर की थी।

(२) देश में कम्यूनिस्टों का बल बढ़ा था और दिन-रात राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को गालियां दी जाती थीं।

यहां हम दोनों की गतिविधियों में तुलना नहीं कर रहे। यह स्थान इस तुलना के लिये नहीं है। कम्यूनिष्ट और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, दोनों संगठनों में कौन अच्छा है और कौन बुरा, इसकी विवेचना हम यहां नहीं कर रहे। जो कुछ हम कह रहे हैं, वह यह है कि श्री जवाहरलाल जी के १७ वर्ष के राज्य काल में कम्यूनिज्म को अपार प्रोत्साहन मिला था और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की भरपूर भर्त्सना हुई थी। संसद के भीतर और बाहर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के विरुद्ध बहुत कुछ कहा गया था। इस पर भी जिन मामलों में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ तथा उसके घटकों पर न्यायालयों में मुकद्मे चले थे, किसी भी एक मुकद्मे में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को दोषी सिद्ध नहीं किया जा सका। अभी तक हमारे ज्ञान में एक भी ऐसा मामला नहीं आया, जिसमें किसी न्यायालय ने इस संस्था को दोषी करार दिया हो।

और कम्यूनिस्टों के विषय में तो ऐसे अनगिनत मामले समक्ष आये हैं, जहां उन द्वारा संचालित मज़दूर यूनियनें दोषी पायी गयी हैं।

इसके अतिरिक्त एक बात और है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का मुख देश के भीतर की ओर है और कम्यूनिस्ट दल का मुख देश से बाहर की ओर है। इस पर भी यह बात निर्विवाद है कि जवाहरलाल जी के राज्य काल में कम्यूनिस्टों को अपार प्रोत्साहन मिला था।

(३) सन् १९४७ से सन् १९६५ तक देश पर तीन आक्रमण हुए। प्रथम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आक्रमण सन् १९४७ में पाकिस्तान का कश्मीर पर; दूसरा सन् १९६२ में चीन का लद्दाख और आसाम पर, तीसरा सन् १९६५ में पाकिस्तान का भारत पर।

पाकिस्तान और कश्मीर दोनों की समस्याओं के निर्माण में जवाहरलाल नेहरू जी का हाथ उल्लेखनीय है।

पाकिस्तान बनने और चीन के तिब्बत पर आक्रमण के विषय में श्री जवाहरलाल का दृष्टिकोण पढ़ने के लिये श्री के० पी० एस० मेनन की पुस्तक और चीन के विषय में श्री वल्लभभाई पटेल और श्री जवाहरलाल जी में पत्र-व्यवहार पठनीय हैं।

(४) यह सम्भव है कि सन् १९४७ में कांग्रेस अथवा कोई भी हिन्दुस्तानी संस्था देश-विभाजन न रोक सकती। परन्तु उस देग-विभाजन में जो कुछ हुआ और करोड़ों उन लोगों को जिन्होंने पाकिस्तान की मांग की थी और पाकिस्तान बनाने के लिये मालाबार से पेशावर पर्यन्त दंगे-फसाद किये थे, भारत में रख उनकी रक्षा के प्रबंध में जो कुछ श्री जवाहरलाल ने किया, वह श्री एन० बी० गाडगिल की पुस्तक "From Inside the government" से भलीभांति स्पष्ट होता है।

(५) भारत की विदेश नीति जिससे देश रूस की गोदी में जा बैठा है, एक दुःखद् कहानी है। १९२४ से ही श्री जवाहरलाल कम्यूनिज़म और कम्यूनिस्ट रूस के साथ एकमयता की बात करते रहे थे। इस विषय में पण्डित जी द्वारा लिखा पूर्ण साहित्य साक्षी है।

इसी प्रकार अनेक बातें हैं जिनको भारत के असंख्य लोग पसन्द नहीं करते।

परन्तु जो बात हम यहाँ कह रहे हैं, वह श्री जवाहरलाल के राज्यकाल के वृत्तान्त के विषय में नहीं, वरन् इस विषय में है कि इस प्रकार के शासन के उपरान्त भी उनकी लड़की को प्रधानमंत्री बनने के लिये देश के लोगों की रुचि और उनकी लड़की के उपरान्त उसके पुत्र संजय को देश का प्रधानमंत्री बनाने की आकांक्षा और फिर संजय के देहावसान के उपरान्त इन्दिरा के दूसरे लड़के को राजगद्दी पर बैठाने की लालसा क्या राजा की सन्तान को राजा बनाने की अभिरुचि प्रकट नहीं करता?

अभिप्राय यह है कि शासक निर्वाचित हो अथवा परम्परागत से हो, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। मुख्य बात है—राजा का दण्ड। दण्ड का अभिप्राय शासन है अर्थात् नियम भंग करने वाले को दण्डित करने वाला। मनुस्मृति में स्पष्ट कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः ।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभू स्मृतः ।।[१]

वह दण्ड ही राजा है, वही पुरुष है, वही नेता है, वही शासक और चारों आश्रमों के धर्म का साक्षी है ।

राजा दण्ड है, राजा पौरुषयुक्त है । वह नेता [जनता के समक्ष उदाहरण] है । चारों वर्णों के धर्मों का वह साक्षी [देखने वाला] है ।

इसी के विषय में राष्ट्र के लक्षणों में कहा है ।

राजा को कर्त्तव्य का पालन करने वाला होना चाहिये । राजा परम्परा से राजपुत्र हो अथवा प्रजा से निर्वाचित हो, यह दूसरे दर्जे की बात है । दोनों के अपने-अपने गुण-दोष हैं । हिन्दू राष्ट्र में ये दोनों चल सकते हैं । ध्यान देने योग्य बात यह है कि राष्ट्र का क्षेत्र राज्य और राजा के क्षेत्र से सर्वथा और अधिक व्यापक है । राज्य अर्थात् शासक राष्ट्र का एक अंग मात्र है ।

एक अन्य बात यहां ध्यान देने योग्य है । वह यह कि राजा धर्म का निर्माता नहीं । धर्म का अर्थ आजकल की भाषा में कानून है । राजा कानून बनाने वाला नहीं होता । धर्म (कानून) के अनुसार शासन चलाने वाले को राजा कहते हैं ।

आजकल भारत में प्रचलित राज्य प्रणाली के अनुसार शासन करने वाली संस्था और कानून बनाने वाली [धर्म व्यवस्था देने वाली] संस्था दोनों संसद है । यह प्रथा अनर्थकारी सिद्ध हो रही है । हिन्दू राष्ट्र की कल्पना में ऐसा कदापि नहीं हो सकता ।

यह प्रथा कि संसद शासन भी करे और कानून भी बनाये, एक दूषित प्रथा है । राजा धर्म-व्यवस्था का निर्माता नहीं होता ।

जिस प्रबंध में शासकों को धर्म-व्यवस्था में हस्तक्षेप करने की स्वीकृति हो, वह प्रबंध हिन्दू राष्ट से मेल नहीं खा सकता । वह असुर राष्ट्र से ही मेल खा सकता है ।

इस कारण हम कहते हैं कि हिन्दू राष्ट्र में शासन धर्म-व्यवस्था नहीं दे सकता । दी गयी धर्म-व्यवस्था के अनुसार शासक देश का शासन चलाता है ।

यह हम आगे चलकर बतायेंगे कि धर्म-व्यवस्था (कानून बनाना) और शासन करना पृथक्-पृथक् कैसे कार्य कर सकते हैं । यहां तो हम यही बता रहे हैं कि राजा और राज्य राष्ट्र का एक अंग मात्र हैं ।

---

१. मनुस्मृति—७-१७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# सप्तम अध्याय

## राज्य और राष्ट्र

इस अध्याय में हम 'स्टेट' शब्द के उन लक्षणों पर अपने विचार व्यक्त करना चाहते हैं जो शब्द कोष में अर्थ ५-ए में बताये हैं। शब्द कोष में कहा है—

A body of people permanently occupying a definite territory and politically organised under a sovereign government almost entirely free from external control and possessing coercive power to maintain order within the community.

इस अर्थ का विश्लेषण करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि—

(१) स्टेट (राष्ट्र) एक जनसमूह है;
(२) वह जनसमूह एक भूमि खण्ड पर स्थाई रूप में रहता हो;
(३) उस जनसमूह का अपने देश पर स्वायत्त सम्पन्न शासन हो;
(४) किसी प्रकार के भी विदेशी नियंत्रण से वह स्वतंत्र हो;
(५) जनसमूह में शान्ति रखने की सामर्थ्य रखता हो;

हमारे विचार में इस समय भारत में जो जनसमूह है, वह इन लक्षणों से युक्त नहीं है। परिणामस्वरूप इस समय देश में इन अर्थों में भी 'स्टेट' नहीं है।

हम इन्हीं अर्थों में भारत में 'स्टेट' चाहते हैं। हिन्दू राष्ट्र से यही सब कुछ अभिप्रेत है। साथ ही कुछ अधिक भी है। यही समझाने का हम प्रयास करेंगे।

भारत में दो बड़े समुदाय हैं जो अपनी जातीय श्रद्धा-भक्ति देश से बाहर बताते हैं। एक बड़ा समुदाय है मुसलमानों का। इनके नेता जब भी अवसर देखते हैं यह बात भारत के रहने वालों पर स्पष्ट कर देते हैं कि उनकी भक्ति (loyalty) भारत में दूसरे दर्जे की है। अभी कुछ दिन पूर्व दिल्ली जामा मस्जिद के इमाम श्री बुखारी के विषय में यह कहा जा रहा था कि उसने एक वक्तव्य में कहा है कि एक मुसलमान की वफादारी पहले इस्लाम के लिये है और पीछे भारत के लिये।

सन् १९४६ में यही विचार देश-विभाजन का कारण बना था। सन् १९३६ के लेजिस्लेटिव असेम्बली के चुनाव ही इस बिना पर हुए थे कि मुसलमान हिन्दूओं से एक पृथक् कौम हैं। इस कारण वे अपने लिये पृथक् देश (पाकिस्तान) चाहते हैं। उस निर्वाचन में मुसलमान मतदाताओं में से लगभग ९५ प्रतिशत मत इसी आधार पर मुस्लिम लीग को मिले थे। जो पांच प्रतिशत के लगभग मत मुस्लिम लीग को नहीं मिले, उनमें से प्रायः मत उत्तर पश्चिमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सीमा प्रान्त में खान मिनिस्ट्री को तथा पंजाब में खिज़िर मिनिस्ट्री को मिले थे।

उससे भी पहले मौलाना मुहम्मद अली यह ऐलान करते रहते थे कि उनकी वफ़ादारी इस्लाम के प्रति पहले है और हिन्दुस्तान के प्रति पीछे।

देश-विभाजन के उपरान्त हिन्दुस्तान में सात-आठ करोड़ मुसलमान रह गये थे। इन सात-आठ करोड़ मुसलमानों में से सन् १९४६ में प्रायः सबने पाकिस्तान के पक्ष में मत दिया था। ऐसी अवस्था में यह मान लेने में कुछ संकोच नहीं किया जा सकता कि इनकी वफादारी भारत देश के प्रति यदि है तो दूसरे दर्जे पर है।

हिन्दुओं में भी कई मज़हब हैं, परन्तु आज तक किसी भी हिन्दू ने अपने मज़हब को देश के मुकाबिले में न तो कभी खड़ा किया है, न ही मज़हब को देश से ऊपर कहा है।

हम समझते हैं कि हिन्दू राष्ट्र में इस प्रकार के मुसलमानों के लिये, जो देश के प्रति वफादारी को दूसरा दर्जा देते हों, स्थान नहीं है। वे देश का तथा राष्ट्र का अंग नहीं माने जा सकते।

परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि इनको भारत से बाहर कर दिया जाये। हिन्दू राष्ट्र में इनका क्या स्थान हो, यह एक पृथक् विषय है। इनका स्थान निश्चय किये जाने से पूर्व इनको अपनी स्थिति स्पष्ट करनी होगी।

राष्ट्र के बताये अंगों में ऐसे लोगों का, जो भारत के प्रति वफ़ादारी को दूसरा दर्जा देते हों, न तो सहयोग हो सकता है, न ही स्थान। इस पर भी भारत में इनका क्या स्थान है, यह स्पष्ट किया जा सकता है।

एक बात यहां स्पष्ट करनी पड़ेगी कि कोई भी राष्ट्र अपने भीतर अराष्ट्र-वादियों की संख्या बढ़ने नहीं दे सकता। मुसलमानों की संख्या सन् १९५१ से सन् १९७१ के बीच बहुत बढ़ी है। यह चिन्ता का विषय है। इसका प्रबन्ध कैसे किया जाये? इस का विचार करना होगा।

मुसलमानों के अतिरिक्त ईसाई हैं। विशेष रूप में रोमन-कैथोलिक। इनकी वफादारी भी भारत से बाहर है। ये लोग कहते हैं कि रोम के पोप के प्रति इनकी वफादारी राजनीतिक नहीं है। वे यह भी कहते हैं कि वे भारत देश के वफादार नागरिक हैं। इस कारण यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इनका मुआमला मुसलमानों से भिन्न है। इस पर भी जहां तक राष्ट्रीयता का प्रश्न है, इनको, देश में विघटन की आशंका में कारण समझा जाना असम्भव नहीं।

इसका एक उदाहरण निकट भूतकाल में मिला है। एक संसद संदस्य श्री ओमप्रकाश त्यागी ने संसद में एक 'बिल' उपस्थित किया था। यह बिल था कि जहां भी कोई धन के लोभ से, झूठ और अन्य प्रलोभनों से मत परिवर्तन कराये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अथवा कराने में सहायक हो, वह दण्डनीय हो। इस पर पूर्ण ईसाई जगत् में भारी हो-हल्ला मचा था। ईसाई, विशेष रूप में रोमन कैथोलिक ईसाई, इस कानून के बनने का विरोध कर रहे थे, यद्यपि प्रस्तावित कानून में ईसाइयों का नाम तक नहीं था। यह कानून सब मतावलम्बियों के लिये समान रूपेण था और मत-परिवर्तन जैसी बात के लिये धोखा-धड़ी, लोभ तथा अन्य प्रलोभन कोई भी ईमानदार व्यक्ति उचित नहीं कह सकता। इस पर भी ईसाई जगत् का इस विषय में वा-वहेला करना, क्षम्य नहीं हो सकता। यह अराष्ट्रीयता का प्रदर्शन है। इसके आधार में ईसाई मतावलम्बियों की संख्या देश में बढ़ाने में किसी बुरी नीयत की आशंका होती है। स्वराज्य प्राप्ति के समय से हो नागालैण्ड में और अब भारत के पूर्वी सीमावर्ती प्रदेशों में जो कुछ हो रहा है, वह ईसाई मज़हब से ही सम्बन्धित है।

इनके अतिरिक्त देश में कुछ ऐसे भी तत्त्व हैं जो देश में ऐसी प्रथाओं को चलन देने में यत्नशील हैं, जिनसे देश के शौर्य और ऐक्य में हानि होने की आशंका है। उदाहरण के रूप में देश में शराब पीने की सुविधाओं के लिये यत्न करना, देश में बहुपत्नीक विवाह को प्रोत्साहन देना, देश में दूध-घी इत्यादि के स्रोत को निःशेष करने का यत्न करना, भोग-विलास की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देना इत्यादि।

इन बातों के विषय में कानूनी प्रतिबन्ध तो नहीं हो सकता, परन्तु जाति में इन कर्मों का प्रचार और इनके लिये सुविधाएं उत्पन्न कराने का आन्दोलन घोर अराष्ट्रीयता के कार्य हैं।

इसमें एक उदाहरण ले सकते हैं। शराब पीना कानून से बन्द करना उचित नहीं। कदाचित् यह सम्भव भी नहीं है। परन्तु यह एक प्रकार का विष है, जिसका निर्माण करना पाप है। अतः इसका निर्माण अपराध माना जाना चाहियें।

शराब के कारखाने का अभिप्राय किसी छोटी-बड़ी निर्माणशाला से नहीं है। छोटे अथवा बड़े कारखाने सब वर्जित होने चाहियें।

इस पर यह कहा जाता है कि घरों में अवैज्ञानिक ढंगों से लोग शराब बनायेंगे। यह वर्जित तो होना चाहिये, परन्तु पीने पर प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिये। इस प्रकार से बनायी शराब प्रायः दूषित होती है और इससे कहीं-कहीं बड़े-बड़े स्तर पर हत्याएं होती देखी गयी हैं। परन्तु क्या बड़े कारखानों में बनी शराब अमृत का काम करती है?

हम समझते हैं कि इस प्रकार पीनेवालों की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। ऐसे मरने वालों की भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। यह तो आत्महत्या के तुल्य का कार्य है। आत्महत्या करने के उपरान्त अपराध नहीं रहता। कारण यह है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उस अपराध का दण्ड नहीं दिया जा सकता। इस प्रकार दूषित शराब के पीने से यदि कोई मरता है तो वह मरने वाला दण्डनीय नहीं है। हां, उस शराब का निर्माता दण्डनीय हो।

इस पर प्रश्न रह जाता है कि दोष-रहित शराब के बनाने पर प्रतिबन्ध क्यों हो? प्रतिबन्ध इस कारण होना चाहिये क्योंकि शराब छुपी हुई, तपेदिक की भाँति, धीरे-धीरे मारने वाली विष है। यह जाति में शौर्य और सद्भावना का हनन करने वाली है।

हां, दवा के रूप में इसका निर्माण वह भी नियमबद्ध किया जाना चाहिये।

अभिप्राय यह है कि शराब बनाना वर्जित हो, पीना वर्जित नहीं। पीने का विरोध शिक्षा का प्रश्न है और शिक्षा के विषय में कानून का प्रयोग अनुचित है।

यही बात वेश्यागमन की है। वेश्यागार, वेश्याओं के बाजार और अड्डे वर्जित होने चाहियें, परन्तु वेश्यागमन नहीं। उसके दूषित परिणामों के प्रचार से इस दुर्व्यसन में फंसने वाले को सचेत करना चाहिये।

इसमें एक बात समझ लेनी चाहिये कि शराब पीने से वेश्यागमन अधिक दोषपूर्ण है। क्योंकि यह एक व्यक्ति के अकेले का कार्य नहीं है। इसमें दो व्यक्ति सम्बन्धित होते हैं।

अतः इसमें दोनों पक्षों की स्वीकृति का भी प्रश्न है। जब एक पक्ष पर इस कर्म के लिये बल प्रयोग किया जाये तो यह घोर अपराध होता है। इसे बलात्कार कहते हैं। इसके लिये कठोर दण्ड होना ही चाहिये।

शराबखोरी, वेश्यागमन इत्यादि दुष्कर्म शिक्षा के विषय हैं। ये राज्य नियम के विषय नहीं हैं। परन्तु बलात्कार तो अधर्म है। यह दण्ड विधान का विषय है।

इस प्रकार कुछ एक कार्य जो राष्ट्र के शौर्य, मनोबल तथा शान्ति-व्यवस्था में घातक हैं, उनको वर्जित करने का प्रबन्ध होना चाहिये।

इसी प्रकार अश्लील नाटक तथा अश्लील साहित्य है। ये राष्ट्र की जड़ों को खोखला करने में सहायक होते हैं। इस कारण इनका प्रकाशन अराष्ट्रीय कार्य है।

ऊपर हमने गो-दुग्ध का प्रश्न भी रखा है। भारत में इसका समाधान गो-हत्या-निरोध से किया जाता था। इस्लामी राज्य में गो-हत्या एक मज़हबी अधिकार समझा गया था और ईसाईयों के राज्य में गो-मांस खाना पेट भरने के अधिकार से उचित माना गया था। यद्यपि ये दोनों अधिकार युक्तियुक्त नहीं हैं, इस पर भी गो-हत्या के विषय में हम कठोर नियंत्रण की आवश्यकता समझते हैं। दूध का स्थानापन्न अभी तक पता नहीं चला। इस कारण भी गो-वंश की रक्षा होनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यहां हमने कुछ एक कार्यों का वर्णन किया है, जिनसे राष्ट्र दुर्बल होता है और जिनका प्रबन्ध हम राज्य से नहीं चाहते। यहां हमने यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि ये कार्य राष्ट्र के हैं।

राष्ट्र के सब कार्य राज्य अपने डण्डे के बल से नहीं कर सकता। यही हमने बताने का यत्न किया है। शासन का राष्ट्र के कार्यों में हस्तक्षेप सीमित ही है। हमने एक उदाहरण शराब का दिया है। हमारे विचार में शराब का निर्माण शासन के नियंत्रण मे होना चाहिये। शराब की बिक्री भी नियंत्रण में होनी चाहिये, परन्तु शराब पीने से रोकना, राज्य का कार्य नहीं है। यह राष्ट्र के एक अन्य विभाग का कार्य है, जो शिक्षा से सम्बन्ध रखता है।

आज देश में राज्य की ओर से शराब पर कर-वृद्धि करके यह समझा जा रहा है कि शराब बंदी सम्भव हो सकेगी। यह मिथ्या धारणा है। ऐसा नहीं हो सकेगा। शराब की बिक्री में वृद्धि हो रही है। यह प्रथा एक दूषित कार्य से सरकार का खर्च चलाने का साधन बन गया है। समय पाकर अब यह सरकार चलाने के लिये एक महान् सहायक बन गया है। शराब निर्माण पर उतना ही कर उचित है, जितना किसी औषध के निर्माण पर है। शराब का महंगा होना शराब के प्रयोग में बाधक सिद्ध नहीं हुआ। प्रत्युत सरकार की आय करने के कारण यह एक महत्त्वपूर्ण उद्योग हो गया है।

प्रश्न उपस्थित होता है कि राष्ट्र और राज्य (शासन) का परस्पर किन-किन क्षेत्रों में सम्बन्ध है?

राष्ट्र राज्य से एक व्यापक संस्थान् है। राज्य का निर्माण राष्ट्र के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिये बना है। अतः यह देखना होगा कि राज्य के क्या अधिकार हैं और राज्य राष्ट्र के किन-किन कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

हिन्दू राष्ट्र की श्रेष्ठता में यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है। एक देश में रहते हुए राष्ट्र की सीमाएं क्या हैं? उन सीमाओं से बाहर क्या है और उन सीमाओं के भीतर क्या है, इसका अधिकार कितना है तथा शेष पर किसका अधिकार है? इन सब प्रश्नों पर हम पृथक्-पृथक् लिखेंगे।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्ड दो

# प्रथम अध्याय

## राज्य और राष्ट्र एक ही क्यों नहीं ?

हिन्दू अर्थात् प्राचीन भारतीय प्रथा के अनुसार राज्य दंड है। यह अपने कर्त्तव्य दंड की सहायता से पूर्ण करता है। क्योंकि राष्ट्र के सब अंग दंड से नहीं चल सकते, इस कारण राज्य का नियंत्रण उन अंगों पर हो नहीं सकता।

क्या ऐसे कुछ कार्य हैं जो राष्ट्र के तो हैं, परन्तु राज्य उनको करने में असमर्थ है। अथवा राज्य उनको करे तो दंडधारी होने के कारण राज्य उनको बिगाड़ देगा।

हमारा मत है कि आइये, ऊपर बताये राष्ट्र के लक्षणों में देखें कि उनमें कौन-कौन कार्य ऐसे हैं जो दंड [शासन] से नहीं हो सकते अथवा यदि वे दंड से किये जायें तो उनसे लाभ के स्थान हानि होने की सम्भावना है।

वेद में राष्ट्र के जो लक्षण बताये हैं, उन लक्षणों में से एक-एक को लेकर हम बताना चाहते हैं कि वे राज्य के हस्तक्षेप का विषय हैं अथवा नहीं।

वेद में पहली बात कही है—परमेश्वर। यह हमने बताया है कि परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन वहां नहीं किया गया। हमने यह भी बताया है कि जब तक हम यह मानते हैं कि एक सर्वव्यापक, सर्वोपरि, सर्वशक्तिमान् कोई तत्त्व है, तब तक विवाद नहीं। इसमें राज्य कुछ भी नहीं कर सकता। अधिक से अधिक राज्य यह कर सकता है, जो एक रूप में अब भी करता है, कि राज्याधिकारी राज्य पद को ग्रहण करते समय शपथ ले कि वह ईश्वर को साक्षी रख कर यह वचन देता है कि वह अपने कर्म को राज्य के नियमानुसार चलायेगा।

वर्तमान संविधान में इतनी छूट है कि वे लोग, जो परमात्मा को नहीं मानते, अपनी ईमानदारी और अपने अन्तरात्मा की सौगंध लेकर यही शपथ लेते हैं। प्रश्न यह है कि सबका अन्तरात्मा, जो कुछ भी वह है, क्या एक समान विचार और आदेश देने वाला यंत्र है? सब में सदा एक समान रहने वाला कोई तत्त्व है? यदि नहीं है तो उसका भरोसा कैसे किया जा सकता है?

मान लीजिये, एक प्रधानमंत्री, अपने पद की शपथ लेते समय अपने अन्तरात्मा में यह समझता है कि भारत के संविधान को संसद बदल नहीं सकती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तथा इसको बदलने के लिये एक विशेष संविधान सभा ही सक्षम है। परन्तु एक ही वर्ष के उपरान्त वह यह समझने लगता है कि संविधान को बदलने की सामर्थ्य संसद में है और उसे बदलने पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता। तब वह प्रधान-मंत्री अपने व्यवहार को बदलने के लिये न्याय-संगत है अथवा नहीं?

इसी कारण किसी व्यक्ति के अन्तरात्मा को साक्षी मानकर ली गयी शपथ अर्थहीन है। वह शपथ है ही नहीं। शपथ तो किसी अटल, स्थिर और सदा एक से रहने वाले तत्त्व की ली जा सकती है। इसी प्रकार अपने मान-प्रतिष्ठा की सौगन्ध भी अर्थहीन है।

इसी कारण हमारा कहना है कि अपने अन्तरात्मा, 'कान्शंस' 'ज़मीर' इत्यादि की शपथ भी अर्थहीन है। क्योंकि ये परिवर्तनशील तत्त्व हैं।

शपथ किसी स्थाई तत्त्व की होनी चाहिये। वह तत्त्व 'प्रकृति' हो सकती है, परन्तु ज़मीर, अन्तरात्मा इत्यादि नहीं हो सकता।

हम शपथ योग्य परमात्मा के लक्षण बताते हैं। वेद में एक मंत्र है,

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥[1]

अर्थ है—वह [परमात्मा] सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, कायारहित, विकार-रहित, अछिद्र, नस-नाड़ी के बंधन से रहित, शुद्ध, पवित्र और पाप से असम्बद्ध, पूर्ण ज्ञानवान्, मननशील, दुष्टों से दूर, अनादि सनातन, सबके साथ समभाव रखने वाला, जो जैसा है, वैसा ही उसे जानता और बताता है।

ऐसी किसी शक्ति की शपथ तो कुछ अर्थ भी रखती है। ऐसी शक्ति का कुछ भी नाम रखें, इसमें अन्तर नहीं पड़ता।

यह शक्ति तो है। परन्तु इस शक्ति के स्वरूप के विषय में निश्चय करने का कार्य राज्य का नहीं है। कुछ भी स्वरूप निश्चय करें, यह व्यक्ति के अपने-अपने विचार करने की बात है। इसके स्वरूप का प्रचार और प्रसार राज्य का काम नहीं है। यदि राज्य यह कर्म करेगा तो वह उसको मनाने के लिये बल का प्रयोग भी करेगा। तब यह तानाशाही हो जायेगी।

परन्तु राष्ट्र, राज्य-सत्ता के बिना, इस विषय में यत्न कर सकता है। उसके पास राज्य-सत्ता के अतिरिक्त भी साधन हैं। वे साधन हैं—शिक्षा, विद्वानों के प्रवचन, विज्ञ लेखकों के लेख, कलाकारों के प्रदर्शन इत्यादि। ये सब बता सकते हैं, युक्ति-प्रतियुक्ति कर सकते हैं, प्रमाण से सिद्ध कर सकते हैं। इनमें कुछ

---

१. यजुः ४०-८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ऐसे भी होंगे जो किसी पैगम्बर की भांति कह सकते हैं कि वह सातवें आसमान पर बैठा है और फरिश्तों से दुनिया की खबर लेता रहता है।

यह राष्ट्र का कार्य है। अभिप्राय यह है कि राष्ट्र के शिक्षा प्रसाधनों का कार्य है कि जन-जन को परमात्मा के स्वरूप का दर्शन कराये। परन्तु राष्ट्र का यह अंग सेना, पुलिस और न्यायालयों से सम्बन्धित नहीं हो सकता।

इसी प्रकार विद्वान लोग संसार की विभिन्न समस्याओं पर क्या विचार करते हैं, यह राष्ट्र के कार्यों के अन्तर्गत है तो, परन्तु यह कार्य भी राज्य से अर्थात् राज्य के दण्ड से पृथक् है। एक वाक्य में हम यह कह सकते हैं कि राष्ट्र पाठशालाओं, विद्यालयों और विश्वविद्यालयों का स्वामी है और राष्ट्र का यह अंग राज्य से पृथक् है। अभिप्राय यह है कि राष्ट्र डण्डे से स्वतंत्र होना चाहिए।

हमने राष्ट्र के प्रथम दो कार्य "ब्रह्म" और "ब्रह्मवर्चसा" की व्याख्या की है। ये दोनों कार्य राज्य से पृथक् हैं। राज्य का इन पर किसी प्रकार का अधिकार नहीं। इन पर राज्य अपने बल का प्रयोग नहीं कर सकता।

राज्य इनमें एक ही स्थिति में हस्तक्षेप कर सकता है। जब राष्ट्र का शिक्षा-विभाग राष्ट्र को ही विध्वंस करने लगे।

इस बात को कुछ स्पष्ट करने की आवश्यकता है। ऊपर हमने कहा है कि राष्ट्र को आस्तिक होना चाहिए। यदि कोई विद्यालय अथवा विश्वविद्यालय यह पढ़ाने लगे कि परमात्मा है ही नहीं, संसार में जिसकी लाठी उसकी भैंस है तो यह राष्ट्र के मूलभूत आधार को विध्वंस करना होगा। वह अराष्ट्रीयता का अपराधी होगा और राष्ट्र राज्य की सहायता से उसको सन्मार्ग दिखा सकता है।

इसी प्रकार यदि कोई उच्च पदाधिकारी यह कहने लगे कि वह विद्वानों की चिन्ता छोड़ कर जो मन में आये, वही करेगा तो इस राष्ट्र-विरोधी व्यवहार पर वह राज्य के दंड-विधान का आखेट बन जायेगा।

राष्ट्र का विधान यह है कि मनुष्य के कार्यों से ऊपर एक सर्वशक्तिमान् तत्त्व है। कोई उच्च पदाधिकारी कहने लगे कि—

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी।
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोन्योऽस्ति सदृशो मया।।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।।[1]

अर्थ है—मैंने उसे पराजित कर लिया और शेष को भी पराजित कर दूंगा; मैं ही ईश्वर (सबका शासक) हूं, सबका भोग करने वाला हूं, मैं

---

१. भ० गीता १६—१४, १५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बलवान हूं, सुखी हूं;

मैं धनवान हूं, मेरे समान कौन दूसरा है ? मैं सब बड़े कार्य करूंगा, मैं सबको दूंगा।

इस प्रकार के आज्ञानी को राष्ट्र राज्याधीन कर सकता है। ऐसा व्यवहार राष्ट्र के विपरीत है।

यद्यपि प्रचार करने अर्थात अपने विचारों का प्रसार करने की स्वतंत्रता सबको है, परन्तु ऊपर जो (भगवद्गीता के श्लोकों में) कहा है, वह विचार नहीं है, वरन् व्यवहार से सम्बन्ध रखता है। राष्ट्र के विद्वानों द्वारा राष्ट्र के विधि-विधानानुसार व्यवहार का निश्चय होने पर ही व्यवहार की स्वीकृति दी जा सकती है।

यदि राष्ट्र के स्वरूप का भलीभाँति अध्ययन किया जाये तो पता चलेगा कि उसके लक्षणों में ३,४,५,६ लक्षण (शूरवीर सैनिक, आधुनिक शस्त्रास्त्र, बुद्धिमान सेनाध्यक्ष, विद्वान शासक) राज्य सम्बन्धी हैं। वे धारायें ही राज्य का स्वरूप बनाती हैं। वे ही राज्य का दंड हैं। यहां हम यह भी बताने का यत्न करेंगे कि किस प्रकार इन धाराओं से सम्बन्धित व्यक्ति अपना संगठन बना राष्ट्र के अधीन रह सकते हैं।

राष्ट्र के लक्षणों में ७,८,९,१० लक्षण (दूध देने वाली गऊएं, कुशल स्त्रीवर्ग वाहन तथा स्वस्थ जीवन ) राष्ट्र की अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध रखते हैं। इनका भी हम पृथक् वर्णन करेंगे। ये राज्य के कार्य नहीं हैं।

यहाँ हम केवल इतना ही स्पष्ट करना चाहते हैं कि राज्य पूर्ण राष्ट्र नहीं। यह राष्ट्र का एक अंग मात्र है। राष्ट्र के, राज्य के अतिरिक्त भी कार्य हैं। उन कार्यों का प्रबंध राष्ट्र को राज्य की सहायता के बिना करना चाहिये। उनमें राज्य की सहायता तब ही ली जा सकती है, जब उन कार्यों को करने वाले राष्ट्र-विरोधी कार्य बलपूर्वक करने लगें।

राष्ट्र के उन लक्षणों का, जो अंग्रेज़ी शब्द-कोष में कहे हैं, अध्ययन करने पर भी पता चलेगा कि राष्ट्र (स्टेट) राज्य से कुछ अधिक है। उनके अनुसार भी राष्ट्र एक जनसमूह है। जन समूह का अभिप्राय है मनुष्यों का एक समूह, भेड़ों का नहीं। भेड़ों के समूह में और मनुष्य के समूह में अन्तर है। भेड़ें इकट्ठी रहती हैं दो कारणों से। एक तो एक दूसरे को देखकर इकट्ठी रहती हैं, उनके स्वरूप में समानता रहती है तथा उनका एक दूसरे से जन्म का सम्बन्ध होता है। इनके अतिरिक्त गडरिये का डण्डा भी उनको इकट्ठे रखता है। परन्तु मनुष्य के इकट्ठे रहने का कारण इनके अतिरिक्त होता है। वह कारण है विचार और आचार की समानता। मनुष्य अपने जैसे विचार और आचरण वालों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


में रहने से सुख अनुभव करता है। इसी कारण जनसमूह को जो समान रूप से व्यवहार रखते हैं, समाज कहते हैं। पशुओं (भेड़ों) के झुंड को समाज नहीं कहते।

इसका अभिप्राय यह है कि स्टेट का अर्थ है—एक समान आचार-विचार रखने वाले मनुष्यों का समूह। यह स्वेच्छा से ही हो सकता है। विभिन्न आचार और व्यवहार के मनुष्यों का समूह स्वेच्छा से नहीं होता। कभी किसी स्थान पर विभिन्न विचार और आचार के लोगों को इकट्ठा रखा भी जा सकता है। वहाँ उनके आचार और विचार में कुछ एक बातों में भी समानता न हो तो वे इकट्ठे नहीं रह सकते। वे लड़ पड़ेंगे।

आचार-विचार समानता बलपूर्वक नहीं लायी जा सकती। अतः यह दंड विधान का विषय नहीं है। यह शिक्षा का विषय है। शिक्षा प्रेरणा का रूप है। यह कानून का रूप नहीं।

इस कारण किसी देश में जनसमूह का निर्माण दंड विधान का विषय नहीं। जनसमूह का होना दो बातों पर निर्भर करता है। एक यह कि देश में रहने वाले मनुष्यों में कुछ बातें समान हित की हों। उन समान हित की बातों को देश के रहने वाले अपने हित में समझें। तब उस देश के रहने वाले एक मानव-समूह बन जायेंगे। अन्यथा वह समूह नहीं रह सकेगा। और यदि उसे बलपूर्वक, सेना और पुलिस के बल से एक रखने का यत्न किया जायेगा तो वह भेड़ों का एक रेवड़ बन जायेगा। उनमें मानवता के लक्षण नहीं रहेंगे।

अतः शब्दकोष में प्रथम लक्षण राष्ट्र (स्टेट) का यह है कि उसमें मनुष्यों का समूह रहता हो, जो कुछ एक बातों में अवश्य ही समान हित की भावना रखता हो।

उन समान हित की बातों में यदि उस जनसमूह का कोई अंश भेदभाव करने लगे तो वह जनसमूह राष्ट्र नहीं रह सकता। इस विषय में हिन्दू परम्परा है—

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

अर्थात् जो अपने प्रतिकूल हो, वह दूसरे के साथ व्यवहार में न लाये।

उदाहरण के रूप में हमने यह निश्चय किया है कि मजहबी मुआमलों में हम स्वतंत्र हों। इसका अभिप्राय यह है कि जनसमूह में उतने ही मजहब हो सकते हैं जितने उसके घटक हैं।

इसे समझने के लिए मजहब के लक्षण करने होंगे। अर्थात् मजहब के निश्चित अर्थ मानने होंगे।

हिन्दू परम्परा है कि मजहब व्यक्तिगत बात है और इसमें ऊपर लिखा सिद्धान्त 'आत्मनः 'प्रतिकूलानि···' कार्य करेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उदाहरण के रूप में एक मुसलमान यह मानता है कि उसे सुन्नत करवानी चाहिये; उसे खड़े होकर परमात्मा की बन्दगी करनी चाहिये और उसकी नमाज़ अरबी के शब्दों में होनी चाहिये। वह ऐसा मान सकता है। परन्तु वह किसी दूसरे को वैसा करने पर विवश नहीं कर सकता। वह यह भी नहीं कह सकता कि वह दूसरा भी अवश्य सुन्नत कराये अथवा खड़े होकर परमात्मा की बंदगी करे।

इसी प्रकार अन्य जनसमूहों की बातें हैं। एक शैव है। वह नित्य प्रातः शिवालय में जाकर शिवलिंग पर दूध मिला जल चढ़ाता है। यह उसका मज़हब ही है। जो ऐसा नहीं करना चाहता, उसको विवश नहीं किया जा सकता कि वह अवश्य ही ऐसा करे।

निजी आचार-विचार की बात को मज़हब कहते हैं और इसमें 'आत्मनः प्रतिकूलानि···' वाला सिद्धान्त चलना आवश्यक है। यदि इस प्रकार के व्यवहारों में राजदंड का प्रयोग होगा तो वह उन अर्थों में राष्ट्र (स्टेट) नहीं होगा जिन अर्थों में अंग्रेज़ी शब्दकोष में कहा है।

इससे यह स्पष्ट है कि अंग्रेजी शब्दकोष के लक्षणों में भी राष्ट्र का यह लक्षण ऐसा है जो दंड विधान के अधीन नहीं।

इसी प्रकार एक मनुष्य कलमा पढ़ता है और मानता है कि 'मुहम्मद रसूल इल्लाह' है। यह उसकी व्यक्तिगत बात हो सकती है। उसका साथी ऐसा नहीं भी मान सकता। यह मनाना बलपूर्वक नहीं हो सकता। जहां इसके लिये बल प्रयोग होगा; वहाँ राष्ट्र के इस लक्षण का विरोध होगा।

अंग्रेजी शब्दकोष में राष्ट्र (स्टेट) का दूसरा लक्षण है कि वह एक भूमिखंड पर रहता हो।

किसी भूमि-खंड पर रहना क्या रहने वाले की इच्छा का विषय है अथवा वहाँ के राज्य का ? हम समझते हैं कि मनुष्य कहां रहे, यह उसके निजी विचार करने का विषय है। इसमें देश का राज्य हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

इस विषय में वर्तमान व्यवस्था को समझना चाहिये। भूमंडल के प्रायः सब देशों ने देश में से बाहर जाने वालों पर और बाहर से देश में आने वालों पर प्रतिबन्ध लगा रखा है।

हम समझते हैं कि यह किसी भी मनुष्य को देश छोड़ने और भूमंडल के किसी भी भूखण्ड पर जाकर रहने में बाधा का सूचक नहीं है। यह वहाँ के समाज का अंग बनने पर प्रतिबन्ध है।

उदाहरण के रूप में भारत का एक नागरिक भारत छोड़कर इटली में जाकर रहना चाहता है। उस मनुष्य ने यदि देश के और समाज के प्रति सब प्रकार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



देय दे रखे हैं तो देश की सरकार उसे जाने का पासपोर्ट देने से न नहीं कर सकती।

यह एक नागरिक का कानूनी हक है कि उसे देश से बाहर जाकर विदेशों में घूमने, फिरने तथा रहने की स्वीकृति हो। हां, वह तब तक देश नहीं छोड़ सकता, जब तक उसने देश के टैक्स इत्यादि देय देने हों।

इस प्रकार कोई विदेश उसे अपने देश में घुसने तब तक नहीं दे सकता अर्थात् उसे वहां आने का 'विसा' नहीं दे सकता, जब तक उस देश को विश्वास नहीं हो जाता कि वह उनके समाज में किसी प्रकार का विस्फोट अथवा कोई वहाँ के कानून से दंडनीय कार्य नहीं करने आ रहा।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि राष्ट्र का दूसरा लक्षण कि वह एक भूमिखंड पर स्थाई रूप से रहता हो, कोई ऐसा लक्षण नहीं जो किसी दंड-विधान से विवश कर कराया जाता है। मनुष्य स्वेच्छा से ही अपने जन्म के देश में रहता है।

राष्ट्र (स्टेट) के तीसरे लक्षण को राज्य-संचालित कहा जा सकता है। किसी राष्ट्र के उस भूमिखंड पर जिसमें उस राष्ट्र का निवास हो, वहां उसका स्वायत्त शासन हो। इसका अभिप्राय यह है कि वहां पर शान्ति-व्यवस्था (law and order) वह राष्ट्र रख सके। राष्ट्र यह व्यवस्था राज्य के द्वारा ही रख सकता है।

इसी प्रकार चौथा लक्षण है कि किसी प्रकार का विदेशीय नियंत्रण इस राष्ट्र पर न हो। इसमें भी राष्ट्र को राज्य की सहायता की आवश्यकता होगी। हां कई एक बातों में विदेशीय नियंत्रण विदेशी राज्य के बल से नहीं किया जाता। वैसे नियंत्रण से बचने का उपाय भी राष्ट्र राज्य की सहायता के बिना कर सकता है।

इसका अभिप्राय यह है कि विदेशी प्रभाव दो प्रकार का होता है। एक तो राजकीय। उदाहरण के रूप में कोई विदेशी राज्य हमारी भूमि पर अधिकार जमाने का प्रयत्न करे। यह विदेशीय राज्य सेना द्वारा ही कर सकता है और सेना द्वारा ही इसका विरोध हो सकता है।

विदेशी राज्य, आक्रमण के बिना भी अपना प्रभाव उत्पन्न करने का यत्न कर सकता है। जैसे कम्यूनिस्ट रूसी अथवा कम्यूनिस्ट चीनी भारत राष्ट्र पर प्रभाव उत्पन्न कर रहे हैं। इसका विरोध राष्ट्र ही कर सकता है।

राष्ट्र का शिक्षा-विभाग इतना प्रबल होना चाहिये कि इन विदेशीय एवं असामाजिक चलन का विरोध युक्ति, ज्ञान और स्वाभिमान से कर सके। यह तब ही सम्भव है जब राष्ट्र का शिक्षा-कार्य अपने देश के राज्य से पृथक् और स्वतंत्र हो। यदि देश का शिक्षा विभाग राज्य के अधीन होगा तो फिर राष्ट्र इस विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


में पंगु हो जायेगा और वह विदेशीय प्रभाव को रोकने की सामर्थ्य से वंचित हो जायेगा।

अतः विदेशीय नियंत्रण से बचने के लिये एक क्षेत्र में राज्य कार्य करता है और दूसरे अन्य क्षेत्र में राष्ट्र राज्यातिरिक्त साधनों से कार्य करता है।

कोई विदेशीय राष्ट्र अथवा राज्य किस उद्देश्य से अपना प्रभाव किसी दूसरे राष्ट्र पर अथवा राज्य पर डाल रहा है? यह यहां विचारणीय नहीं। विचारणीय यह है कि अपने राष्ट्र पर अथवा प्रशासन पर विदेशीय प्रभाव छल, बल तथा प्रचार से पड़ रहा है। अतः इसको रोकने के लिये राष्ट्र राज्य बल से अथवा बिना राज्य बल के भी, जैसी स्थिति हो, उपाय कर सकता है।

राष्ट्र (स्टेट) का पांचवा लक्षण है शान्ति रखने की सामर्थ्य। शान्ति से अभिप्राय केवल शान्ति-व्यवस्था (law and order) ही नहीं। यह तो राज्य का ही कार्य है। आजकल के कानून में 'ला ऐंड आर्डर' का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप में धर्म (कानून) का उल्लंघन करने वालों को पकड़ कर दंडित करना माना जाता है। परन्तु इसका एक दूसरा स्वरूप भी है। अपराध अर्थात् धर्म (law) का उल्लंघन मनुष्य मन से प्रेरित हो करता है। यह प्रेरणा मुख्य रूप में दो स्रोतों से प्राप्त होती है। एक तो कामनाओं (desires) का सामर्थ्य से अधिक हो जाने के कारण; दूसरे, कानूनी सुविधाओं के न मिलने अथवा कम मिलने के कारण। मनुष्य का सामर्थ्य असीम नहीं होता। परन्तु मन जो कामनाओं का स्थान है, वह अपनी उड़ान की असीम सामर्थ्य रखता है। इसलिये वेद में बार-बार यह कहा है— 'तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु' अर्थात् मेरा मन शुभ तथा उचित संकल्पों वाला हो। ये संकल्प ही कामनाएं होती हैं। जब कामनाएं व्यक्ति की सामर्थ्य के भीतर रहें तो वे पूर्ण होती रहती हैं। जब कामना व्यक्ति की सामर्थ्य के बाहर चली जाती हैं तो पूर्ति के लिये सब प्रकार के अधर्माचरण की प्रेरणा देने लगती हैं। इस कारण कामनाओं और व्यक्ति की सामर्थ्य का संतुलन रखने के लिये ज्ञान की आवश्यकता होती है। यह शिक्षा का विषय है। इसमें राज्य दंड-विधान कुछ नहीं कर सकता।

धर्म (law) के उल्लंघन करने का एक दूसरा कारण हमने बताया है कानून द्वारा प्राप्त सुविधाओं का अपर्याप्त होना। तब कानून भंग करने की प्रेरणा होती है। जहां पहला कारण राष्ट्र के शिक्षा विभाग का क्षेत्र है, वहां दूसरा कारण देश के कानून और संविधान में सुधार का है।

यहां हमने यह बताने का यत्न किया है कि अंग्रेजी कोष के अर्थों में भी राष्ट्र के कुछ कार्य ऐसे हैं जो राज्य नहीं कर सकता और राज्य को वे नहीं करने चाहियें। वे कार्य राज्य के अतिरिक्त साधनों से राष्ट्र कर सकता है और उसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


करनें चाहियें।

राष्ट्र राज्य से बड़ा संस्थान् है। राज्य राष्ट्र का एक अंग मात्र ही है।

अर्थव्यवस्था के विषय में आजकल राज्य सीमा से अधिक हस्तक्षेप कर रहा है। इस विषय में हम पृथक् बताने का यत्न करेंगे कि हिन्दू राष्ट्र की कल्पना में अर्थ का क्या स्थान है।

# द्वितीय अध्याय

## वर्तमान व्यवस्था में राष्ट्र और राज्य का सम्बन्ध—(१)

इस सम्बन्ध का वर्णन हम भारत की व्यवस्था के सन्दर्भ में ही करेंगे। दूसरे देशों में क्या है और किस प्रकार वहां के नागरिक वहां की व्यवस्था को स्वीकार कर रहे हैं, साथ ही वे उसको कैसा अनुभव करते हैं, हमारी इस पुस्तक का विषय नहीं है। हिन्दू राष्ट्र की आवश्यकता का घोष हम भारत में ही कर रहे हैं। इस कारण हम यहां की व्यवस्था का ही वर्णन करेंगे।

इसके लिये हमें भारत के संविधान पर विचार करना होगा। हमारा संविधान ही देश में राष्ट्र तथा राज्य के परस्पर सम्बन्ध का द्योतक है।

सबसे पहली बात जो ध्यान देने योग्य है, वह है यहां की शिक्षा का प्रबन्ध।

अंग्रेजों के आने से पहले यहां की शिक्षा पर राज्य का अधिकार नहीं था। मुसलमानी राज्य में एक ही नियंत्रण था। वह यह कि राजकीय कार्यों में फारसी भाषा का चलन रहेगा। इस कारण यदि कोई हिन्दू (हिन्दुस्तान का नागरिक) विदेशीय (पठानी, तुरानी अथवा मुगलानी) राज्य कार्य में सेवा-कार्य चाहता था तो उसे फारसी भाषा पढ़नी पढ़ती थी।

उस काल में भी बहुत से हिन्दू थे, जो पठानों और मुगलों के राज्य में सेवा-कार्य करते थे और फारसी भाषा भली-भांति बोलते एवं लिखते थे। इस पर भी वे इस भाषा को कहां से पढ़ें, इस पर राज्य की ओर से किसी प्रकार का बन्धन नहीं था।

यह तो बंगाल में अंग्रेजी शासन स्थापित होने पर ही हुआ कि मैकॉले की योजनानुसार राज्य-कार्य को चलाने के लिये अंग्रेजी पढ़े-लिखे और वे भी अंग्रेजी सरकार द्वारा चलाये स्कूल-कालेजों और विश्वविद्यालय के स्नातकों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नियुक्त किया जाने लगा।

अंग्रेजी भाषा का पढ़ना इतना दोषयुक्त नहीं था, जितना यह कि सरकार द्वारा चलाये और सरकार से नियंत्रित विश्वविद्यालयों से शिक्षित व्यक्ति ही राज्य कार्य पा सकता है।

विश्वविद्यालयों में क्या पढ़ाया जाये और उसमें किस ढंग से पढ़ाया जाये, यह सरकार के अधीन हो जाने से पूर्ण जाति की मानसिक अवस्था को बिगाड़ने वाला सिद्ध हुआ है। उस काल की सरकार राष्ट्रीय नहीं थी। वह केवल शासक थी, जो देश के राष्ट्र के अन्तगर्त नहीं थी, वरन् एक विदेशीय राष्ट्र के अधीन थी। इसके दूषित परिणाम क्या हुए हैं, इसका वर्णन हम शिक्षा के अध्याय में करेंगे। यहां हम केवल यह बता रहे हैं कि हिन्दू (हिन्दुस्तानी) राष्ट्र की शिक्षा कैसे राज्यान्तर्गत हुई।

इंग्लैंड की सरकार का ऐसा करने का क्या उद्देश्य था, यह मैकॉले और इंग्लैण्ड की तत्कालीन सरकार के भीतर हुए पत्र-व्यवहार से विदित होता है। परन्तु मैकॉले के मन में क्या था, यह उसके एक पत्र से, जो उसने अपने पिता को, यह शिक्षा चालू करने के दस वर्ष उपरान्त लिखा था, पता चलता है। उसने लिखा था—यदि यह शिक्षा बीस वर्ष तक चलती रही और हिन्दू युवकों को दी जाती रही तो इस शिक्षा से शिक्षित कोई भी युवक हिन्दू नहीं रह जायेगा।

हिन्दू नहीं रह जायेगा, इसका अभिप्राय यह था कि हिन्दू राष्ट्रवादी नहीं रहेगा। मैकॉले की यह भविष्यवाणी बीस वर्ष में तो सिद्ध नहीं हुई, परन्तु यह डेढ़ सौ वर्ष में सर्वथा सिद्ध हो गयी है। आज राज्य बदल जाने के उपरान्त भी शिक्षा राज्य के अधीन है। राज्य इस शिक्षा से शिक्षित लोगों के हाथ में है और इस शिक्षा ने क्या किया है, वह उन लेखों को पढ़ने से विदित होता है जो 'इलस्ट्रेटिड-वीकली के १५-२१ जून १९८० के अंक में छपे हैं।

मैकॉले द्वारा प्रस्तावित और ब्रिटिश काल में ब्रिटिश राज्य द्वारा संचालित तथा ब्रिटिश राज्य के उपरान्त कांग्रेस शासन द्वारा संचालित शिक्षा का ही यह परिणाम है कि भारत में रहने वाले हिन्दू परिवारों में पले लोग हिन्दू के विषय में लिखते हुए हिन्दू राष्ट्र से सर्वथा अनभिज्ञता का प्रदर्शन कर गये हैं।

तनिक इस पत्र के सम्पादक की मानसिक अवस्था का और इसमें हिन्दू राष्ट्र (हिन्दू स्टेट) के विपरीत लिखने वाले लेखकों की मानसिक अवस्था का निरीक्षण करें तो पता चलेगा कि मैकॉले की शिक्षा ने इस देश के राष्ट्र के घटकों पर कितना दूषित प्रभाव उत्पन्न किया है।

**इस पत्र के इस अंक के मुख पृष्ठ पर ही राम, लक्ष्मण इत्यादि के चित्र**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के साथ मूंछ वाले हनुमान का दर्शन यह प्रकट करता है कि सम्पादक हिन्दू राष्ट्र (हिन्दू स्टेट) को एक मज़हबी संस्थान् समझ कर यह अंक निकाल रहा है। वह हिन्दू का अर्थ एक मजहब ले रहा है।

वह चित्र एक मज़हबी चित्र है। हिन्दू राष्ट्र के नाम पर इस चित्र को देना यह प्रकट करता है कि लेखक को हिन्दू के अर्थ ही ज्ञात नहीं।

हिन्दू से अभिप्राय मूंछ वाले हनुमानजी को प्रतिष्ठा देना नहीं है। हम ऊपर बता आये हैं कि हिन्दू शब्द विदेशियों के इस देश में राज्य का विरोध करने वालों का नाम है। क्योंकि मुसलमानी और पीछे अंग्रेजी भी मजहबी राज्य थे, इस कारण हिन्दुस्तान के नाम पर उन मज़हबी राज्यों का विरोध करने वाले भी एक मज़हब समझे गये।

यह ऐसे ही है जैसे मज़हब विहीन (irreligiousness) होना भी एक मज़हब हो जाता है, क्योंकि यह मज़हबों का विरोध करता है। यही बात हिन्दू शब्द के साथ हुई है। राम के भक्त, कृष्ण के भक्त, शंकरपंथी, रामानुजी, आर्यसमाजी अथवा अन्य मत-मतान्तरों वालों ने कभी केवल अपने ही पंथ का राज्य चलवाने का आयोजन किया हो, ऐसा इतिहास से पता नहीं चलता। मुसलमानों से पूर्व बौद्ध मत और जैन मत वालों के राज्य तो मज़हबी राज्य थे, वे राज्य बल से अपने मज़हबों को चलवाते थे; परन्तु उनका क्या परिणाम हुआ, यह इतिहास बताता है।

एक समय था कि बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक एक छत्र, अशोक द्वारा संचालित बौद्ध राज्य था। परन्तु इतना बड़ा साम्राज्य पचास-साठ वर्ष में ही जर्जर हो विखंडित क्यों हो गया, यह बात कोई नहीं बताता, और अशोक के राज्य की बहुत प्रशंसा की जाती है। यद्यपि अशोक की मृत्यु के दस-बीस वर्ष के भीतर ही अशोक की सन्तान का राज्य एक छोटे से सीमित क्षेत्र में रह गया था। ऐसा क्यों हुआ ? यह कोई मुख से नहीं निकालता है।

इस पत्र के इस अंक में एक श्री आर० जे० के० लिखते हैं—

Considered in this manner in the whole of Indian history, only Ashoka's empire had some resemblance ot the theocratic state......

अर्थात् भारत वर्ष में केवल अशोक का साम्राज्य ही एक मज़हबी राज्य से मिलता था—

हमने बताया है कि यह साम्राज्य अशोक के मारने के पचास-साठ वर्ष के भीतर विध्वंस हो गया था। यही लेखक कहता है कि भारतवर्ष में प्रायः राज्य असाम्प्रदायिक रहे हैं, परन्तु उस विज्ञ लेखक को यह भी विदित होना चाहिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कि आदिकाल से लेकर बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक इस देश में राष्ट्र असाम्प्रदायिक हिन्दू रहा है। यह तो सन् १६०६ के लार्ड मिन्टो की घोषणा के उपरान्त इस देश के राष्ट्र को हिन्दू राष्ट्र से कुछ भिन्न करने का यत्न किया गया था।

हमारा यह कहना है कि मुसलमानी राज्य में भी हिन्दुस्तान में हिन्दू राष्ट्र ही था। दुर्भाग्य से राष्ट्र और राज्य में विरोध चल पड़ा और हिन्दू राष्ट्र के अपने स्वरूप को भली-भांति न पहिचानने के कारण राज्य राष्ट्र से प्रबल हो गया।

चाहिये यह था कि राष्ट्र राज्य पर प्रबल होता, परन्तु राष्ट्र में कुछ दोष घुस आने के कारण देश का राज्य राष्ट्र पर प्रभावी हो गया। पूर्ण राष्ट्र राज्य के पांव तले कुचला जाता रहा। सन् १६०० तक भी देश में राष्ट्र हिन्दू ही था यद्यपि राज्य अंग्रेज के अधीन चला गया था।

सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के उपरान्त अंग्रेज़ शासकों को समझ आया कि राज्य और राष्ट्र में असंगति है। जब सर ए० ओ० ह्यूम ने सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया को यह रिपोर्ट दी थी कि हिन्दुस्तान की विशाल जनता राज्य से असन्तुष्ट है तो यह इस बात का प्रमाण था कि उस काल का राष्ट्र राज्य से तालमेल नहीं रखता था। यही बात मुसलमानी राज्य में थी। दोनों कालों में सांझी बात यह थी कि राज्य इतना प्रबल था कि यह राष्ट्र की अवहेलना कर सकता था। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि राष्ट्र इतना दुर्बल था कि कुछ सहस्र राज्य अधिकारियों को सन्मार्ग नहीं दिखा सका था।

इस पर भी यह स्पष्ट है कि मुसलमानी काल में और ब्रिटिश काल में राष्ट्र और राज्य दोनों थे और पृथक्-पृथक् थे।

यही बात देश में आज दिखाई देती है। राज्य और राष्ट्र में तालमेल नहीं है।

एक बात विशेष यह है कि राज्य का ढांचा प्रजातंत्रात्मक होने से राज्य राष्ट्र को कुछ दुर्नीतियुक्त ढंग से दबा कर रख रहा है। प्रजा के एक अंग को दूसरे अंग के विपरीत भड़का कर नेतागण देश में अराष्ट्रवादी अंगों को खड़ा कर रहे हैं और इस प्रकार वे लोग राज्याधिकारी बने हुए हैं जो राष्ट्र विरोधी व्यवहार अपनाते हैं।

'इलस्ट्रेटिड-वीकली' के इस विशेषांक में लिखने वाले एक लेखक आर० जे० के० जहां यह कहते हैं कि भारत में केवल अशोक ही मजहबी राजा रहा है, वहां वे हिन्दुओं को, जो इस देश में राज्य करते रहे हैं, बुरा-भला भी कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वह लिखते हैं—

Since I am born to Hinduism, I am emotionally attached to it and I tend to take pride in its appaernt virtues as much as I tend to belittle its equally apparent shortcomings. Even if I am not a 'practising' Hindu, I cannot be separated from the Hindu consciousness and it would cause me the utmost pain if I were to be severed from it.

अर्थ है—

मैं जन्म से हिन्दू हूं। इस कारण मैं भावना से इससे सम्बद्ध हूं और इसकी प्रत्यक्ष अच्छाई को देख मेरे मन में गर्व होता है। साथ ही इसकी बुराइयों को देख कर इसके प्रति तिरस्कार भी होता है। हिन्दू मज़हबी बातों पर आचरण न करते हुए भी मैं हिन्दू होने के अनुभव से पृथक् नहीं हो सकता। यदि मुझे इससे पृथक् कर दिया जाये तो मुझे बहुत दुःख होगा।

यही लेखक आगे लिखते हैं—

I expect my neighbour—Muslim, Christian, Sikh, Zoroastrian, Jain, Buddhist or Jew—to have a similar attachment to his religion. It is another matter however for me to be so proud of my religion that those belonging to other faiths should submit to me.

अर्थ है—

मैं आशा करता हूं कि मेरा पड़ोसी मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, जुरस्ट्रियन, जैन, बौद्ध भी अपने मज़हब से वैसा ही सम्बन्ध रखे। मेरा अपने मज़हब से सम्बन्ध और उसमें गर्व एक पृथक् बात है।

परन्तु अगले ही सांस में यह लेखक कहते हैं—

The theocratic state is the logical extreme of a people's pride in their religion to the exclusion of others ; it is the ultimate expression of the bigoted. While I do not think religion is an anachronism today, I think the theocratic state definitely is.

अर्थात्—

परन्तु मज़हबी राज्य युक्तियुक्त अन्त है, लोगों के अपने मज़हब में गर्व का, जिससे दूसरों को बाहर किया जा सकता है। मतान्धों का यह अन्तिम चलन है। जब कि मैं यह समझता हूं कि आज के काल में मज़हब इतना पुराना गला-सड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विचार नहीं है, परन्तु मज़हबी राज्य है।

इस प्रकार यह लेखक अपने एक वचन को दूसरे में खंडित करता चला जाता है।

परन्तु हिन्दू राष्ट्र एक मज़हबी राज्य होगा, यह कभी किसी ने कहा है क्या? वास्तविक बात यह है कि अंग्रेजी भाषा में बातें करने वाले यह भी नहीं जानते कि वे क्या कह रहे हैं।

हमने बताया है कि इस पत्रिका के सम्पादक और फिर इसमें लेख लिखने वाले 'स्टेट' शब्द के अर्थ को ही नहीं समझते। 'स्टेट' एक देश में रहने वाला जनसमूह है जो उस देश के ज्ञान-विज्ञान, धन-दौलत, इसकी शान्ति-व्यवस्था और इस देश की रक्षा का उत्तरदायी होता है।

केवल बात इतनी है कि इन सबको हिन्दू नाम लेने में लज्जा लगती है। वास्तव में यह लज्जा नहीं है। यह भय है मुसलमानों, ईसाईयों और विशेष रूप में विदेशियों का।

हम पूछते हैं कि लगभग एक सहस्र वर्ष से अधिक काल से देश का नाम हिन्दुस्तान चला आता था। उसी नाम पर यहां के रहने वाले निरन्तर विदेशियों का विरोध करते रहे थे। फिर १५ अगस्त १९४७ के बाद इस देश का नाम हिन्दुस्तान बदल कर 'भारत दैट इज़ इंडिया' करने की क्यों आवश्यकता पड़ी? हिन्दुस्तान 'दैट इज़ इंडिया' क्यों नहीं रहने दिया गया?

तनिक सन् १९०६ से भारत के इतिहास का अध्ययन करें तो पता चलेगा कि हिन्दू नाम से देश के एक बहुत बड़े जनसमूह को पृथक् करने का षड्यंत्र अंग्रेज़ी नीतिज्ञों ने किया है। मुसलमान अपने को एक मज़हबी जनसमूह मानते हुए हिन्दू शब्द के विरुद्ध हो गये थे। जब लार्ड मिन्टो ने सन् १९०६ में यह घोषणा की थी कि देश के रहने वाले जनसमूह से मुसलमान एक पृथक् जनसमूह है तो मुसलमान हिन्दू शब्द से अपने को पृथक् मानने लगे। उन्होंने देश में हिन्दू शब्द से अपने को पृथक् करने का विचार स्वीकार किया तो दुर्बलात्मा कांग्रेसियों को भी हिन्दू शब्द से तटस्थता भली समझ आयी।

यह अनुभव अंग्रेज राजनीति चलाने वालों को सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के उपरान्त हुआ था कि देश का राष्ट्र, देश के राज्य के विरुद्ध संगठित हो रहा है और उन्होंने देश के राष्ट्र में दरार उत्पन्न करने का विचार बनाना आरम्भ कर दिया। इसी विचार को लेकर सर ए० ओ० ह्यूम ने जब कांग्रेस की स्थापना की थी तो मुसलमानों के डेलीगेटों का कांग्रेस में पृथक् 'कोटा' निश्चय किया था।

इसी विचार को विधान में मूर्त रूप देने के लिये लार्ड मिन्टो ने सन् १९०६ में मुसलमानों की रक्षा का आश्वासन दिया था।

Central Library Gurukula Kangri (Deemed to be University) 167377

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हमारे अंग्रेजी पढ़े-लिखे 'बुद्धिमान' लोग अंग्रेजों की इस नीति को अभी भी चालू रखने का यत्न कर रहे हैं। इस्लाम को एक मज़हबी समुदाय मानने के स्थान हिन्दू को एक मज़हबी समुदाय मान रहे हैं। इन बुद्धिमानों को न तो इतिहास का ज्ञान है, न ही भारत के जनमानस का।

श्री आर० जी० के० ने लेख लिखते समय यह इच्छा तो व्यक्त की है कि उनके पड़ोसी मुसलमान, ईसाई इत्यादि भी वैसे ही उदार हों, जितने वे स्वयं हैं, परन्तु इतना चाहने से क्या हो गया समझ लिया जाये? वस्तुस्थिति यह है कि भूमंडल में इस्लाम नाम से एक संगठन बन रहा है। उस संगठन के भय का अर्थ युरोपियन लोग समझ ही नहीं रहे। वे महापंडित प्रजातंत्र के गोरख-धंधे में फंसे हुए इसे एक आर्थिक झगड़ा समझ रहे हैं। परन्तु जो कुछ ईरान में अथवा पैलिस्टाईन में हो रहा है, वह आर्थिक झगड़ा नहीं है। यह मज़हबी झगड़ा है और पूर्ण भूमंडल की प्रजा की टांग पकड़ कर शताब्दियों पीछे ले जाने का प्रयास है। जो कुछ ईरान में हो रहा है, वह एक संकेत मात्र है जो किसी भी दिन पूर्ण अफ्रीका और मध्य पूर्व के देशों में प्रज्वलित हो जाने वाला है। रूस भी अपनी बेहूदी अर्थव्यवस्था को लक्ष्य रख कर अपनी तानाशाही चलाने वाला, इस इस्लामी दावानल को हवा दे रहा है।

वास्तव में हिन्दू राष्ट्र के प्रवक्ता उस भूमंडल में भड़कने वाली अग्नि का विरोध ही कर रहे हैं और भारत में अंग्रेजी कूटनीति का शिकार बने हुए कांग्रेस विचार के लोग हिन्दू शब्द का विरोध कर रहे हैं। हमारा यह दावा है कि वर्तमान शासन असली अर्थों में 'सैक्युलर' नहीं है। एक मज़हबी राज्य है और अपने इस दूषित वर्ण को छुपाने के लिये सैक्युलर की छतरी लगा घूम रहा है।

भूमंडल के मुसलमानों की मनोवृत्ति का दिग्दर्शन ही ईरान और पाकिस्तान में हो रहा है, जिसका जान-बूझकर अथवा अनजाने में वर्तमान भारत का शासन समर्थन कर रहा है।

क्या इस 'इलस्ट्रेटिड-वीकली' के सम्पादक और उसमें हिन्दू शब्द का विरोध करने वाले लेखकों को ज्ञात नहीं कि किसी भी इस्लामी देश में गैर-मुसलमान को वे अधिकार नहीं हैं, जो मुसलमानों को हैं? रावी से चलकर मौराको तक और भूमध्य सागर से लेकर केप ऑफ गुड होप तक जहां-जहां मुसलमानों का बस चलता है, वहां-वहां गैर-मुसलमानों को एक दूसरे दर्जे का नागरिक बनाने का यत्न किया जा रहा है। जहां तो मुसलमानों की संख्या का अनुपात बहुत अधिक है, वहां अभी संघर्ष प्रत्यक्ष नहीं हो रहा है। वहां मुसलमान, गैर मुसलमानों को भय का कारण नहीं मानते; परन्तु जिन-जिन देशों मे मुसलमान अपने विरोध में कुछ भी बल देखते हैं, वहां संघर्ष प्रबल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भारत एक ऐसा देश है, जहां मुसलमान अभी प्रबल नहीं हैं। यहां वे अपनी जनसंख्या में वृद्धि कर रहे हैं और हमारे भोले बाबा कांग्रेसी इस दुर्नीति का अर्थ न समझते हुए वास्तविक अर्थों में एक असाम्प्रदायिक राज्य स्थापित होने में बाधा डाल रहे हैं। इन 'बुद्धिमान' कांग्रेसियों से पूछा जाये कि यदि परमात्मा न करे भारत में मुसलमानों की जनसंख्या पचास प्रतिशत से ऊपर हो गयी तो वे किस प्रकार यहां भी पाकिस्तान जैसा मज़हबी राज्य स्थापित करने से उनको रोक सकेंगे ?

वर्तमान सरकार किस प्रकार मुसलमानों की जनसंख्या की वृद्धि में सहायक हो रही है, यह इस लेख का विषय नहीं। यहां इस अध्याय में हम यह बताना चाहते हैं कि हिन्दू राष्ट्र देश के रहने वाले जनसमूह का प्रतीक है। भारत का शासन जो सन् १९४७ से चल रहा है, वह देश को देश के रहने वालों का देश नहीं, वरन् मुसलमानों का देश बनाने का यत्न कर रहा है।

इक्के-दुक्के मुसलमानों को छोड़ कर सामान्य मुसलमानों को भारत का मज़हबी बिना पर विभाजन पसन्द था। पाकिस्तान में हो रहे का विरोध भी कहीं प्रकट नहीं हो रहा। मुसलमान वही कर रहे हैं जो वे पिछले एक सहस्र वर्ष से कर रहे थे। अभिप्राय यह कि देश में मतांध मुसलमानों की जनसंख्या में वृद्धि और जहां-जहां मुसलमान बहुसंख्या में हो जाते हैं, वहां उपदेश को पृथक् रखने का प्रयास है। यही अब कश्मीर में हो रहा है।

हमारा इस्लाम मज़हब से मतभेद नहीं। इस्लाम का विरोध बौद्धिक स्तर पर वाद-विवाद से हम करना चाहते हैं। परन्तु, जहां राजनीति में मज़हबी वरीयता का प्रश्न है, वह राष्ट्र का प्रश्न है और हम चाहते हैं राज्य को इसका विरोध करना चाहिये।

देश में राष्ट्र (स्टेट) का बहुसंख्यक जन-समूह देश की भलाई चाहने वाला हो। यह मज़हबों के पचड़े से ऊपर हो, यही हिन्दू राष्ट्र का अभिप्राय है।

'इलस्ट्रेटिड-वीकली' पत्रिका का यह प्रयास जो उसने १९८० जून के अंक में किया है, वह जनता को भ्रम में डाल कर मिथ्या पथ का राही बनाने के लिये है।

वर्तमान काल में यह मानसिक अवस्था है जो अंग्रेजी पढ़े-लिखों ने पैदा कर रखी है कि वे राष्ट्र और राज्य को ग़लत-मलत कर रहे हैं। वे जान-बूझकर अथवा अनजाने में राष्ट्र को दुर्बल बना रहे हैं और राज्य प्रजातंत्रवादी होने के कारण मिथ्या प्रचार के द्वारा अराष्ट्रीयता का प्रसार कर रहा है। इसका परिणाम वही होगा जो देश के एक भाग पाकिस्तान में हो रहा है।

पाकिस्तान बना था क्योंकि हमारे पूर्वजों की मिथ्या-दृष्टि के कारण देश के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कुछ भागों में मुसलमानों की जनसंख्या राष्ट्रवादियों से अधिक हो गयी थी। यही बात अब देश के अन्य भागों में क्यों नहीं हो सकेगी ?

देशवासियों को मज़हबी कहकर, उन्हें हीन कहकर अराष्ट्रवादियों को पनपने का अवसर यह कहकर देना कि हम बहुत उदार हैं, महान् मूर्खता का लक्षण है।

वे समझते हैं कि मुसलमान भी हमारी भांति उदार हो जायेंगे। परन्तु क्या तब वे मुसलमान ही रहेंगे ? इस्लाम उदार हो जायेगा, ऐसा कहना अपने को मूर्ख सिद्ध करना होगा। मुसलमान मानते हैं कि इस्लाम के अतिरिक्त संसार में कुछ अन्य श्रेष्ठ हो सकता ही नहीं।

यहां हम एक बात ईसाइयों के विषय में भी लिख देना चाहते हैं। ईसाई देशों में, हमारा अभिप्राय है कि जिन देशों में ईसाइयों का राज्य है, वहां वैसा कुछ नहीं हो रहा, जैसा इस्लामी देशों में हो रहा है, यह ठीक है। इस पर भी हम पूछते हैं कि फिर धन देकर, झूठ बोल कर, सांसारिक प्रलोभन देकर ईसाई मत परिवर्तन क्यों करा रहे हैं ? इसमें उनका क्या उद्देश्य है ?

जब श्री ओम्प्रकाश त्यागी ने संसद में मत परिवर्तन के विषय में 'बिल' उपस्थित किया था, तब ईसाइयों ने ही हो-हल्ला क्यों किया था ? उस 'बिल' में ईसाइयों का नाम नहीं लिखा था। यह लिखा था कि मत परिवर्तन में धोखा-धड़ी अथवा धनादि का प्रलोभन दंडनीय करार दिया जाये। तब भला केवल ईसाईयों को ही इस बिल से दुःख किस कारण हो रहा था ?

इस हो-हल्ला से कोई मूर्ख भी समझ सकता है कि दाल में कुछ काला-काला है और इस धोखाधड़ी का कुछ हीन उद्देश्य भी है।

'इलस्ट्रेटिड-वीकली' पत्रिका के लेखकों ने देश और जाति के समक्ष उपस्थित वास्तविक समस्या को छोड़ मिथ्या युक्तियां देकर तथा झूठी आशाएं रखकर कि मुसलमान और ईसाई सेक्यूलर बन जायेंगे, अपने को तथा राष्ट्र को धोखा देने का प्रयास किया है।

समस्या, मुसलमान और ईसाइयों की है। शेष मज़हबी समुदायों की नहीं। कुछ सिक्खों में एक वर्ग अकालियों का भी है। परन्तु उनके विषय में उनका अभी आपस में ही झगड़ा है। वे एक मत नहीं हैं। हम समझते हैं कि अकालियों का विष शीघ्र ही फीका पड़ जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# तृतीय अध्याय

## वर्तमान अवस्था में राष्ट्र और राज्य का सम्बन्ध—(२)

राष्ट्र का कार्य-क्षेत्र राज्य से अधिक विस्तृत तथा व्यापक है और प्रथम तथा अत्यावश्यक कार्य जो राष्ट्र का है, वह है शिक्षा का। शिक्षा राज्य के अधीन मैकॉले की योजना से हुई थी।

इसमें मैकॉले का क्या उद्देश्य था, इसके विषय में उसके अपने पिता को लिखे एक पत्र का उल्लेख हमने ऊपर किया है। वह उद्देश्य कैसे सफल हो रहा है, यह इस पुस्तक का विषय नहीं। उस शिक्षा का स्रोत तो ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय है। यह विद्यालय आज से छः-सात सौ वर्ष पूर्व ईसाई धर्म के प्रचार के लिये स्थापित किया गया था और आज तक उस विद्यालय में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में ईसाई धर्म के प्रचार का और इससे भूमंडल में ईसाई राज्य स्थापित करने का यत्न किया जा रहा है। हमें ईसाई धर्म से द्वेष नहीं है। हम अज्ञानता और झूठ से घृणा करते हैं। ज्ञान और सत्य, खुले मन का विषय है। इसके लिये वाद-विवाद द्वारा जानकारी प्राप्त करना एक साधन है।

ऑक्सफोर्ड के विश्वविद्यालय में मतान्धता और अज्ञानता का बोल-बाला है। उस विद्यालय ने हिन्दुस्तान के विषय में ढेरों पुस्तकें लिखी हैं। उन पुस्तकों में हिन्दुस्तान देश के इतिहास और आचार-विचार के विषय में बहुत कुछ निन्दनीय लिखा है और आज भारत के प्रायः सब विश्वविद्यालयों में उसका अनुकरण किया जा रहा है।

बड़े-बड़े प्राध्यापक, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय का अनुकरण करते हुए प्राचीन भारत की निन्दा करने में भलाई मानने लगे हैं। भारत सरकार उन विश्वविद्यालयों को लाखों रुपये का अनुदान देकर प्राचीन भारत को निन्दनीय सिद्ध करने में सहायक हो रही है। हम भारत में अंग्रेजी राज्य की निन्दा इसी कारण करते थे कि उस राज्य ने भारत के ही धन से भारत की निन्दा करने वालों को प्रोत्साहन दिया था। आज भी उस विश्वविद्यालय के चेले-चाटों का भारत में राज्य है और भारत का वर्तमान राज्य भी भारत की परम्पराओं की निन्दा करने वालों को लाखों का अनुदान दे रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शिक्षा में प्रथम दोष यह है कि तकनीकी प्रशिक्षण (techni cal training) को शिक्षा का नाम दिया जा रहा है। वस्तुतः शिक्षा मनुष्य के मन, बुद्धि, जीवात्मा को ठीक मार्ग पर लाने के साधनों को कहते हैं और अंग्रेजी शिक्षा के चेले-चांटे हाईड्रोजन गैस बना गुब्बारे उड़ाने को शिक्षा मानते हैं।

तकनीकी प्रशिक्षण तो शरीर और इन्द्रियों का प्रशिक्षण मात्र है। यह शिक्षा नहीं है।

तनिक इसकी व्याख्या कर दी जाये तो ठीक होगा। विज्ञान के विषय में खोज (research) तो शिक्षा है, परन्तु उस खोज को व्यवहार में लाना प्रशिक्षण है। एक उदाहरण से बात स्पष्ट होगी। ऐटम बम, हाईड्रोजन बम अथवा न्यूट्रोन बम का ज्ञान तो शिक्षा का विषय है। परन्तु उसका ज्ञान प्राप्त कर उससे ऐसे मिसाइल्स बनाना और देखना कि वे कितने काल में कितनी दूर जाकर गिर सकते हैं, यह प्रशिक्षण का विषय है। दोनों आवश्यक हैं। दोनों के अपने-अपने प्रयोग हैं, परन्तु यह नहीं कि एक को दूसरे से ग़लत-मलत किया जाये। यहां हम शिक्षा के विषय में लिख रहे हैं, तकनीकी प्रशिक्षण के विषय में नहीं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि हम तकनीकी प्रशिक्षण को कम महत्व दे रहे हैं।

इस पर भी हमारा कहना है कि तकनीकी प्रशिक्षण बिना मन, बुद्धि और जीवात्मा की शिक्षा के एक अति भयंकर और दूषित बात है जो प्रायः युरोपियन देशों में और वर्तमान भारत में चल रही है।

मन, बुद्धि तथा जीवात्मा को शिक्षित किये बिना इन्द्रियों को उन्नत एवं परिष्कृत किया जा रहा है। इस बात को समझने के लिये इन्द्रियों, मन, बुद्धि और जीवात्मा के कार्य को समझने की आवश्यकता है। पहले इन्द्रियों से ही आरम्भ करें तो ठीक रहेगा।

इन्द्रियां दो प्रकार की हैं। एक ज्ञान उपलब्ध कराने वाली (ज्ञानेन्द्रियां) तथा दूसरी कर्म करने वाली (कर्मेन्द्रियां)। ये दोनों प्रकार की इन्द्रियां, मन के लिये कार्य करती हैं। मन एक प्रकार का स्मृति यंत्र है जो लगभग टेप रिकार्डर की भांति कार्य करता है। जो कुछ मनुष्य देखता, सुनता, सूंघता चखता तथा स्पर्श करता है, उसका प्रभाव मन पर होता है। इन कार्यों को करने वाली कर्मेन्द्रियां तथा ज्ञानेन्द्रियां कही जाती हैं। देखने, सुनने, सूंघने, चलने और स्पर्श करने का अनुभव मन में संचित रहता है। उस संचित प्रभाव से ही मनुष्य सुखकारक अनुभूतियों को पुनः प्राप्त करने का यत्न करता है। मन पूर्व के सुखकारक अनुभवों को प्राप्त करने के लिये कर्मेन्द्रियों को वैसे अनुभव प्राप्त करने का आदेश देता है।

इस मन की इच्छा को कामना कहते हैं। कामनाओं की पूर्ति के लिये मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सदा इन्द्रियों को आदेश देता रहता है। इन कामनाओं पर नियंत्रण बुद्धि करती है।

किसी मन को मिष्ठान्न का स्वाद स्मरण आ जाता है और वह मिष्ठान्न प्राप्त करने के लिये इन्द्रियों को आज्ञा दे देता है। परन्तु यदि बुद्धि सक्रिय और सबल हो तो वह मन की इच्छा अर्थात् कामना पर नियंत्रण रख सकती है। वह मन की कामना की पूर्ति के लिये रोक लगाती है। वह उसे समझा सकती है कि उस समय मिष्ठान्न खाना उसके पेट के लिये हानिकारक होगा। इस समय मिष्ठान्न खाना उचित नहीं। इस प्रकार विचार कर मन को रोकना बुद्धि का काम है।

एक अन्य उदाहरण ले सकते हैं। एक देश के तकनीकी कारीगरों ने एक हाईड्रोजन बम बना लिया है। स्वाभाविक रूप में वे इसका परीक्षण करना चाहेंगे, परन्तु देश के नेता की बुद्धि सबल होगी तो वह इस प्रकार का परीक्षण करने के परिणाम पर पहिले विचार करेगा और लोगों की सुख-सुविधा की आवाज की सुनेगा।

केवल तकनीकी कारीगरों से ऐटम बम बना लेना कारण नहीं हो सकता कि बम का विस्फोट किया ही जाये। उस विस्फोट से होने वाले परिणामों का ज्ञान बुद्धि का कार्य है और वह बुद्धि किसी दूसरे जीव के हित-अहित का भी विचार करती है। जब तक मन, बुद्धि और जीव की एकमयता न हो, तब तक कोई काम ठीक नहीं हो सकता।

इसी कारण हम कहते हैं कि मन, बुद्धि और जीवात्मा की शिक्षा उतनी ही आवश्यक है जितनी इन्द्रियों के किसी कार्य के लिये प्रशिक्षण की। मन तो बहुत ही चंचल यंत्र है। इसको नियंत्रण में रखने के लिये बुद्धि और बुद्धि को सर्वहिताय बनाने के लिये जीवात्मा को उससे भी अधिक बलवान बनाना आवश्यक है।

मन, बुद्धि और जीवात्मा को सबल बनाने का नाम शिक्षा है। मन बुद्धि के नियंत्रण में होना चाहिये और बुद्धि जीवात्मा के। जीवात्मा के स्वभाव को श्रेष्ठ और ज्ञानवान् बनाना चाहिये।

मन, बुद्धि और जीवात्मा के संयोग को चित्त कहते हैं। अतः चित्त के ठीक मार्ग पर चल पाने की योग्यता ही शिक्षा है। यह यदि इन्द्रियों के प्रशिक्षण से अधिक आवश्यक न भी मानें, तब भी उनसे कम आवश्यक नहीं मानी जा सकती।

हम समझते हैं कि चित्त को अधिक और अधिक श्रेष्ठ बनाने की शिक्षा इन्द्रियों को सिधाने से पहले होनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि राज्य यह काम क्यों नहीं कर सकता ?

राज्य राष्ट्र का ऐसा कार्य करने वाला अंग है जिसका सम्बन्ध देश की रक्षा और देश में शान्ति-व्यवस्था से है । अतः इस अंग को राष्ट्र के विषय में विचार करने और निर्णय लेने का कार्य नहीं सौंपा जा सकता।

यह केवल वक्तव्य ही नहीं है। यह युक्ति और प्रमाण से सिद्ध बात है कि राजा अर्थात् शासन करने वाला अंग विचार करने वाला अंग नहीं होता। हमारा मत है कि जब से राष्ट्र के दोनों अंग (विचार करना और विचार किये पर कार्य करना) एक ही व्यक्ति के अधीन हुए हैं, तब से ही राष्ट्र और फिर राष्ट्र के घटकों में ह्रास उत्पन्न हुआ है। ज्यों-ज्यों ये दोनों कार्य एक ही व्यक्ति अथवा संस्थान् के अधीन होते जाते हैं, त्यों-त्यों मानव में और समाज में ह्रास अधिकाधिक होता जा रहा है। भारत में तो स्वराज्य के आरम्भ से ही संसद को सर्वगुण सम्पन्न समझा जाता रहा है और देखा जा सकता है कि देश किस ज्वालामुखी के द्वार पर खड़ा है। सब सही दिमाग व्यक्ति देश के भविष्य के विषय में चिन्तित हैं।

एक शासक संस्थान् विचार का संस्थान् नहीं हो सकता। ऐसा करना तो कुछ ऐसा होगा जैसे पुलिस अधिकारी को यह अधिकार भी दे दिया जाये कि वह कानून भी बना सकता है।

शिक्षा का सम्बन्ध मनुष्य के चित्त से है और राज्य का कार्य मनुष्य की इन्द्रियों से सम्बन्ध रखता है। यदि मनुष्य की इन्द्रियों को ही विचार करने का अधिकार दे दिया जाये तो क्या परिणाम उत्पन्न होंगे, कल्पनातीत हैं।

अतः हम समझते हैं कि शिक्षा-विशेष (education proper) को राज्य के नियंत्रण से बाहर कर राष्ट्र के मनीषियों के हाथ में दे देना चाहिये।

यह कैसे हो सकेगा ? यह एक व्याख्या का विषय है। परन्तु यह असम्भव नहीं। तकनीकी प्रशिक्षण का प्रबन्ध राज्य कर सकता है। इस कारण हमारा मत है कि शिक्षा-विशेष और तकनीकी प्रशिक्षण पृथक्-पृथक् विभागों के कार्य हैं।

पिछले डेढ़ सौ वर्ष से शिक्षा (दोनों प्रकार की) राज्य के अन्तर्गत होने से अब इसे राज्य के नियंत्रण से बाहर करना कठिन और हानिकर समझा जाने लगा है। यह इस कारण क्योंकि हमने अंग्रेजी राजनीति और व्यवस्था की नकल की है। शिक्षा प्रेरणा का विषय है। राज्य दंडधारी होने से शिक्षक नहीं हो सकता।

इस कारण शिक्षा-कार्य राज्य (शासन) का कार्य नहीं है। तो प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यह किस प्रकार किया जायेगा ? यह तब ही समझ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आ सकेगा, जब शिक्षा का अभिप्राय भली प्रकार समझ लिया जाये। मन, बुद्धि और जीवात्मा अर्थात् चित्त को शिक्षित करना ही शिक्षा है।

---

# चतुर्थ अध्याय

## अर्थ-व्यवस्था और शासन

एक बार एक बनिये की दुकान पर एक पठान ग्राहक पहुँचा। उसने पूछा, 'एक सेर गुड़ का क्या लेते हो?'

दुकानदार ने कहा, 'छः आना।'

पठान ने कहा, 'चार आने का एक सेर भर दे दो।'

दुकानदार ने कहा, 'गुड़ का भाव छः आना सेर है।'

पठान का कहना था, 'मगर मेरे पास चार आने से अधिक हैं नहीं।'

दुकानदार ने कहा, 'तो खान! तुम तीन पाव गुड़ ले लो।'

'मगर मुझे एक सेर की जरूरत है। तुम चार आने में एक सेर दे दो।'

'क्यों?' दुकानदार ने पूछा।

पठान बोला, 'यह इस कारण कि मैं तुमसे अधिक बलवान हूं। मैं तुम्हारी सारी दुकान लूट सकता हूं।'

शासक, क्रय तथा विक्रयकर्त्ता दोंनों बन जाये तो यही बात होगी। तनिक कल्पना करें कि दुकानदार एक पठान हो और ग्राहक एक दुर्बल बालक हो तो क्या होगा? पठान बालक से उसकी जेब का रुपया भी निकाल लेगा और उसे माल भी नहीं देगा अथवा जितना मन में आये उतना ही देगा।

देश में शासन बलशाली है और व्यापारी तथा कर्मचारी दुर्बल हैं। इस कारण दुकानदार, शिल्पी तथा मजदूर की वही अवस्था हो जायेगी जो एक पठान के सामने एक दुर्बल दुकानदार अथवा ग्राहक की हो सकती है।

देश की अर्थ-व्यवस्था का अभिप्राय है कि राष्ट्र के घटकों के परिश्रम की उजरत को खरीदने वाली तथा उसका मूल्य देने वाली व्यवस्था। देश में जो कुछ भी प्रकृति की देन है, वह देश में बसे हुए मानवों की ही है। परमात्मा ने अपनी दी हुई प्राकृतिक वस्तुओं पर लेबल नहीं लगाया हुआ कि क्या किसके लिए है। इस कारण किसी भी प्राकृतिक वस्तु का कुछ भी मूल्य नहीं होना चाहिये।

वस्तु का मूल्य तब बनता है, जब उस प्राकृतिक वस्तु को इसकी प्राकृतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अवस्था (raw state) में प्राप्त कर, इसको उपयोगी रूप देने के लिए उस पर परिश्रम किया जाता है। जितना परिश्रम इस कच्चे माल (raw material) को प्राप्त करने में, इसको उपयोगी रूप देने में तथा प्रयोग कियेजाने वाले स्थान पर इसको ले जाने में व्यय होता है, उतना ही इस वस्तु का मूल्य है। वास्तव में इस परिश्रम का मूल्यांकन करना ही अर्थ-व्यवस्था है। राज्य इसमें तब आता है, जब पठान और बनिये वाला झगड़ा आ पड़े।

एक व्यक्ति तथा एक संस्थान्, कारखाना व उद्योग संगठन किसी कच्चे माल को उपयोगी रूप देकर ग्राहक (वस्तु के प्रयोग करने वाले) को देता है। जब खरीदने वाला अथवा बेचने वाला पठान का रूप बन जाये तब शासन के हस्तक्षेप की आवश्यकता पडती है।

इसका यह अर्थ नहीं कि शासन, जो न तो कच्चे माल का स्वामी है, न ही कच्चे माल को उपयोगी रूप देनेवाला है, स्वयं चौधरी बन माल बेचने और खरीदने लग जाये। तब भी वही पठान वाली स्थिति उपस्थित हो सकती है।

यह उन सब देशों में हो रहा है, जहाँ का राज्य अर्थ-व्यवस्था में स्वयं मालिक बन रहा है। कम्यूनिस्ट देशों में पूर्ण उद्योग-धंधे राज्य ने अपने अधीन किये हुए हैं और वहां क्या हो रहा है? वहां के श्रमिकों के श्रम का प्रतिकार मनमाना देकर पद्मों रुपयों को सेना, पुलिस, शस्त्रास्त्र में व्यय कर, राज्यों ने अपने देश के नागरिकों को दास बनाया हुआ है और भूमण्डल के प्राणियों को त्रसित किया हुआ है। यह अर्थ-व्यवस्था के राज्याधीन होने का परिणाम है।

यह ठीक है कि कम्यूनिस्ट अर्थ-व्यवस्था से पूर्व श्रमिकों के श्रम का मूल्य जमींदार, उद्योगपति अथवा व्यापारी मनमाना लगाते थे और श्रमिकों की अवस्था कुछ अच्छी नहीं थी। परन्तु जहां सैकड़ों-सहस्रों व्यापारी, उद्योगपति, ज़मींदार इत्यादि श्रमिकों को लूट रहे थे, वहां अब उन सब के स्थान पर राज्य आ बैठा है। परन्तु क्या श्रमिक की अवस्था में कुछ अन्तर पड़ा है? यह विचारणीय है।

सन् १९२६ में घर में सफाई इत्यादि का काम करने वाला सेवक सात-आठ रुपये महीने पर मिल जाता था। वह दो-तीन घंटे प्रातःकाल और तीन घंटे सायंकाल घर में काम कर शेष समय अपने खेत पर काम करता था।

आज वैसे ही एक सेवक का वेतन देहात में पचास-साठ रुपये महीने से अधिक नहीं है। अर्थात् उस काल से सात-आठ गुना। इस पर भी आवश्यक वस्तुओं का मूल्य तीस से चालीस गुणा हो गया है। कहने का अभिप्राय यह है कि एक सेवक पहले से निर्धन हुआ है और भारत में सन् १९२६ से सन् १९८० तक तीन चौथाई नहीं तो आधा समाजवाद हो चुका है अर्थात् अर्थ-व्यवस्था पर राज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


का नियंत्रण हो चुका है।

नगर में रहने वाले एक चपरासी की भी वही अवस्था है जो हमने एक देहात के सेवक की बतायी है। कहने का अभिप्राय यह है कि देश की अर्थ-व्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप से जनसाधारण को किसी प्रकार की राहत नहीं मिली। ऐसा क्यों है? राजकीय अधिकार से यह आशा की जाती थी कि एक श्रमिक को अधिक सुख-सुविधा मिलेगी, परन्तु आंकड़े यह बताते हैं कि सुख-सुविधा में कमी हुई है।

वस्तुत: अर्थ-व्यवस्था में राजकीय नियंत्रण से वस्तुओं के मूल्य प्रति व्यक्ति-आय में वृद्धि से अधिक बढ़े हैं। इसमें कई कारण हैं। एक प्रत्यक्ष कारण तो यह है कि श्रमिक जितना वेतन लेता है, उतना श्रम नहीं करता, जितना पहले करता था।

इसका उदाहरण किसी भी सरकारी कार्यालय में मिल सकता है। जिस कार्य पर पहले एक व्यक्ति नियुक्त था, उस पर अब तीन-तीन व्यक्ति हैं और इस पर भी काम पूर्ण नहीं हो पाता है। कर्मचारी वर्ग सरकार को अपनी मलकीयत मानते हैं और रूठ कर हड़तालें करते हैं अथवा काम की मेज पर बैठ काम न करते हुए भी पूरा वेतन पा जाते हैं।

इसके अतिरिक्त भी सरकार ने जनता के लिये काम उपलब्ध कराना अपना कर्त्तव्य मान रखा है। इस कारण प्रतिवर्ष अधिक सेवा कार्य निर्माण किये जाते हैं, परन्तु देश में करने वाले कार्यों में वृद्धि नहीं हो रही।

एक अन्य भी कारण वर्तमान दुर्व्यवस्था का है। वह यह कि सरकारी हस्त-क्षेप कुछ ऐसे कार्यों में अत्यन्त वृद्धि पा रहा है जो उपजाऊ (productive) कार्य नहीं हैं।

अर्थ-व्यवस्था में शासकीय हस्तक्षेप का एक यह भी परिणाम हो रहा है कि अर्थ की वृद्धि में कर्मचारी वर्ग की रुचि नहीं होती। अर्थात् कार्य की उन्नति से कर्मचारियों के वेतन का सम्बन्ध नहीं।

यह खराबी एक सीमा तक उद्योगपतियों के कार्यों में भी देखी जाती है। परन्तु वहां हानि-लाभ पाने वाला व्यक्ति सिर पर होने के कारण कर्मचारी कार्य में आलस्य तथा प्रमाद करने से डरता है। सरकारी कार्यों में हानि-लाभ की उत्तरदायी तो है जनता, जो सरकारी कर्मचारियों पर कोई अधिकार नहीं रखती। परिणाम यह होता रहा है कि सामान्य जनता को तो पता भी नहीं चलता कि कार्य में लाभ हो रहा है अथवा हानि और यदि हानि हो रही है तो वह किस कारण से हो रही है।

यदि अर्थ-व्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप का विश्लेषण करें तो निम्न बातें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दृष्टि में आती हैं—

(१) सरकार का व्यापार, दस्तकारी तथा खेती बाड़ी में स्वयं भाग लेना;

(२) व्यक्ति की आय में वृद्धि के साथ कर की दर में वृद्धि करना;

(३) एक उद्योग अथवा व्यवसाय में राष्ट्रीयकरण की नीति से परस्पर प्रतिस्पर्धा होने को रोकना (discouraging competition) ;

(४) बड़े-बड़े कारखाने, फार्म अथवा व्यवसायिक संगठनों को बनाना अथवा बनाने में प्रोत्साहन देना;

(५) मालिक सेवक के झगड़ों में पक्षपातपूर्ण व्यवहार रखना;

(६) सरकारी कार्यालय में काम कम और कर्मचारियों की संख्या अधिक रखना;

(७) बुद्धि, सामर्थ्य और कुशलता में न्यून व्यक्तियों को बुद्धिमानों, सामर्थ्यवानों और कुशल व्यक्तियों के मुकाबले में उपमा देना।

ये कुछ खराबियां हैं सरकारी हस्तक्षेप की अर्थ-व्यवस्था में। हमारा यह मत है कि इनसे जाति निर्धन होती है। और उसमें कुशलता समाप्त हो जाती है। इनकी एक-एक कर, हम यहाँ विवेचना करना चाहते हैं।

सरकार के स्वयं जमींदार, उद्योगपति अथवा व्यापारी होने से कार्य के हानि-लाभ का भोक्ता कौन होता है ? निःसन्देह फार्म को चलाने वाले कारखाने के अधिकारी अथवा व्यवसाय में काम करने वाले उतने ही हानि-लाभ के भोक्ता हैं, जितना कि कार्य से असम्बद्ध बाजार में चलता-फिरता घटक। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि खेतों की उपज, कारखाने की निर्माण शक्ति और व्यवसाय का लाभ कम होता जाता है। यदि किसी किसान, उद्योगपति अथवा व्यापारी के मुकाबले में सरकारी उद्योग मुकाबिला नहीं कर सकता तो उन कार्यों में लगे कर्मचारी हो-हल्ला करने लगते हैं कि मुकाबिले के पूंजीपति अपने कर्मचारियों को लूट रहे हैं। तब मुकाबिले के प्राइवेट काम करने वालों के कर्मचारी हड़तालें करने लगते हैं। उन प्राइवेट काम क़रने वालों के कार्य दिवस कम हो जाने से उनका निर्माण सरकारी उद्योग के मुकाबले में महंगा हो जाता है।

परन्तु यह दो-धारी तलवार है। प्राइवेट कार्यों में कर्मचारी हड़ताल करते हैं तो सरकारी कार्य के कर्मचारी भी हड़ताल करने की इच्छा करते हैं।

सरल-सीधी भाषा में यदि कहा जाये कि काम-चोर सरकारी कर्मचारी निजी क्षेत्र के कर्मचारियों को भी हरामखोरी सिखाते हैं।

सरकारी कार्यों में हानि प्रायः इस कारण होती है कि उनमें हानि-लाभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


के लिये कोई भी व्यक्ति उत्तरदायी नहीं होता। साथ ही सरकारी व्यवसाय में हानि-लाभ होने से वहां के काम करने वालों की आय में अन्तर नहीं पड़ता।

यदि किसी उद्योग, फार्म अथवा व्यवसाय को चलाने वाले हानि-लाभ को स्वयं भोगने वाले हों तो वे खून-पसीना एक कर काम करने का यत्न करेंगे। जब कि सरकार द्वारा नियंत्रित संस्थानों में कारखाना इत्यादि हो तो बंद होने के समय से आधा घंटा पहले ही कर्मचारी अपने औजार समेट घर जाने की तैयारी में लग जायेंगे।

वैसे तो बड़े-बड़े उद्योग भी अथवा बड़ी-बड़ी "फर्में" भी उचित नहीं हैं। किसी काम में जितने अधिक वेतनधारी कर्मचारी होंगे, उतना ही कम लाभ वाला वह व्यवसाय होगा। व्यवसाय अथवा उद्योग का लाभ कर्मचारी की हरामखोरी में विलीन हो जाता है।

बड़े-बड़े कारखाने, बड़े-बड़े फार्म और बड़े-बड़े व्यवसाय-केन्द्र, सबके सब जाति की अर्थ-व्यवस्था को बिगाड़ने वाले होते हैं। और सरकारी मलकीयत में फार्म, व्यवसाय अथवा उद्योग तो देश में सबसे बड़े पूंजीपति के अवगुणों से युक्त होता है।

यदि व्यक्यिगत सरमायादारी दोषपूर्ण है तो राज्य की सरमायादारी और भी अधिक हानिकारक होती है। जो अवगुण एक प्राइवेट पूंजीपति में होते हैं, वही दोष, कई गुणा बढ़कर राजकीय पूंजीवाद में होते हैं।

हमारा यह मत है कि जनता के सामान्य प्रयोग की वस्तुएं (consumer goods) तो व्यक्तिगत प्रयास से और छोटे-छोटे संगठनों से निर्माण होनी चाहियें। इससे माल का व्यर्थ जाना घटेगा, प्रतिस्पर्धा से काम होने पर कार्य परिश्रम से और पूरे ध्यान से होगा। साथ ही प्रतिस्पर्धा होने से निर्मित वस्तुओं में श्रेष्ठता, सुन्दरता और उपयोगिता आयेगी।

सरकारी काम छोटे-छोटे हो सकते ही नहीं। इसमें सबसे बड़ा कारण यह है कि सरकारी अफसर अपने अधीन अधिक से अधिक कर्मचारी प्राप्त कर प्रसन्नता और सुख अनुभव करते हैं।

सरकारी कार्य (nationalized-industry) कुछ एक सैनिक उत्पादनों में जिनका रहस्य प्रकट होने का भय बना होता है तो चल सकता है, परन्तु अन्य कार्यों में, विशेष रूप में जनता के नित्य-प्रति की आवश्यकताओं के निर्माण में व्यक्तिगत काम करने वाले जाति के सामूहिक और व्यक्ति के अपने लाभ के लिये होते हैं।

बड़े कामों में और उन कामों में जिनमें काम करने वालों में कोई भी हानि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लाभ का भोक्ता नहीं, वहां प्राकृतिक उपलब्धियों (natural resources) के विनष्ट होने, व्यर्थ जाने और परिणामस्वरूप प्राकृतिक साधनों के शीघ्र समाप्त होने का भय हो जाता है।

संक्षेप में, राज्य को प्रजा के उपयोग की वस्तुओं का निर्माता नहीं होना चाहिये। सैनिक उपयोग का सामान, जिनके विषय में लुकाव-छुपाव आवश्यक हो, वह सरकार अपने कारखानों में निर्माण करवाये। उसमें हानि-लाभ न तो वस्तुओं पर लगी लागत के साथ सम्बधित होता है, न ही उनके मूल्य का जातीय जीवन स्तर से सीधा सम्बन्ध होता है।

(२) दूसरी बात, जिसे उद्योग इत्यादि में सरकारी हस्तक्षेप का नाम दिया जाता है, आयकर, निर्माणकर, खरीदकर इत्यादि हैं जिनका किसान, व्यापारी अथवा उद्योगपति के प्रयास के साथ सम्बन्ध है।

इस प्रकार के कर उत्पादन में बाधक होने से कीमतों को बढ़ाने वाले और राष्ट्र की निर्धनता में कारण होते हैं।

यह कैसे ? और फिर सरकारी आय का स्रोत क्या हो ? ये दो प्रश्न होते हैं।

इन करों का सीधा सम्बन्ध है एक नागरिक से। ये उसे परिश्रम करने में निरुत्साहित करते हैं। हम पहले आयकर की ही बात लेते हैं। वर्तमान पद्धति के साथ ज्यों-ज्यों किसी व्यवसाय में आय की मात्रा बढ़ती जाती है, कर की दर भी बढ़ती जाती है। परिणाम यह होता है कि जब उद्योगपति अथवा व्यापारी की आय एक सीमा से अधिक होने लगती है तो वह अनुभव करने लगता है कि वह उस कार्य की अधिक वृद्धि न करे। क्योंकि अधिक आय-कर की उपस्थिति में उसकी बचत परिश्रम के अनुपात मे बहुत कम होने लगती है।

मान लीजिये, तीस हजार रुपये से अधिक आय पर आयकर साठ प्रतिशत हो जाता है। आय अधिक करने के लिये व्यक्ति को साधारण आय के अनुपात में अधिक परिश्रम करना पड़ता है और यदि उस अधिक परिश्रम पर कर की दर भी बढ़ जाये तो अधिक आय करने में रुचि कम हो जाती है। इस प्रकार अधिक परिश्रम करने में अरुचि होने लगती है।

इसका एक दूसरा परिणाम भी होता है। वह यह कि व्यापारी अथवा उद्योगपति तीस हजार की सीमा से अधिक आय को छुपाने का यत्न करने लगता है। यह बाजार में नम्बर दो के रुपये को विस्तार देने वाला होता है। .

इस प्रकार एक सीमा से अधिक आय पर कर में वृद्धि करने के दो में से एक परिणाम अवश्य होता है। या तो आय में सीमा पहुंचने पर परिश्रम में शिथिलता आने लगती है अथवा आय को छुपाने का यत्न होने लगता है। दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रवहन अर्थ के विकास में घातक हैं। कर की, विशेष रूप में आय की वृद्धि के साथ, वृद्धि बहुत ही दूषित प्रभाव उत्पन्न कर रही है।

कर लगाने का अर्थ तो केवल यह है कि राज्य के खर्च का प्रबन्ध किया जाये। राष्ट्र में राज्य के कुछ कार्य हैं। उन कार्यों को कुशलतापूर्वक करने के लिये राज्य को खर्च की आवश्यकता रहती है। वह खर्च राष्ट्र को देना चाहिये परन्तु वर्तमान सरकार की कर-प्रक्रिया राज्य की आय का साधन होने के स्थान उद्योग इत्यादि में परिश्रम में उत्साह-हीनता उत्पन्न करती है अथवा बेईमानी करने को प्रोत्साहित करती है।

नम्बर दो की आय प्रायः राष्ट्रीय चरित्र को बिगाड़ने वाली ही होती है। यह आय किसी निर्माण कार्य में नहीं लग सकती। व्यक्ति इसका प्रयोग प्रायः उन कार्यों में करता है, जो प्रकट नहीं किये जा सकते।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सरकार की आय का स्रोत क्या हो?

राज्य का बोझा ढोने के लिये सबसे पहली व्यवस्था यह की गयी है कि देश की सब प्राकृतिक उपलब्धियों का स्वामी राज्य बन गया है। खनिज पदार्थ अथवा जो कुछ भी भूमि के नीचे दबा है, बिना सरकार को कर दिये, उसको कोई ले नहीं सकता। कुछ खनिज पदार्थों पर तो राज्य का एकाकी अधिकार मान लिया गया है। अर्थात् एक नागरिक उनको उपलब्ध नहीं कर सकता। वास्तव में, यह एक बहुत बड़ी आय का स्रोत है, जिसे राष्ट्र ने राज्य का खर्चा चलाने के लिये उसे दे रखा है।

दूसरे, एक सीमा से अधिक आय करने वाले को अपनी आय में से एक अंश राज्य को देना पड़ता है। यह आयकर कहाता है। हमारा विचार है कि इस कर की एक सीमा होनी चाहिये। उदाहरण के रूप में देश की प्राचीन स्मृतियों में यह कथन है कि आय-कर आय के छटे भाग से अधिक नहीं होना चाहिये। इसका अर्थ है कि अधिक से अधिक आय-कर की दर लगभग सत्रह प्रतिशत हो। वर्तमान अवस्था में तो आयकर ९८ प्रतिशत तक जाता है। यह न तो बुद्धिगम्य है, न ही न्यायसंगत। बुद्धिगम्य से हमारा अभिप्राय यह है कि इससे न तो व्यापारी अथवा उद्योगपति को लाभ होता है, न ही राष्ट्र की आय का सदुपयोग हो सकता है। कारण यह कि बड़ी आय करने वालों को आय-कर से बचने के लिये आय छुपाने की प्रेरणा मिलती है। इससे न तो वह आय किसी प्रत्यक्ष उपयोगी कार्य में प्रयुक्त हो सकती है, न ही उस पर राज्यों को कर मिलता है।

हमारे विचार में यदि अधितकतम आयकर सत्रह प्रतिशत कर दिया जाए तो बहुत-साधन जो शराब इत्यादि दुर्व्यसनों में व्यय होता है, वह उपयोगी कार्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में लगेगा और देश के घटकों के लिये कार्य-क्षेत्र विस्तार पा जायेगा।

आय का तीसरा स्रोत जो राज्य के लिये नियत किया जा सकता है, वह है निर्माण कर। इसे ऐक्साईज ड्यूटी कहते हैं। यह कर केवल 'लग्ज़री' (सुख आनन्द भोग) सामान पर ही लगना चाहिये। सामान्य प्रयोग की वस्तुओं पर निर्माण-कर नहीं लगना चाहिये।

सामान्य प्रयोग की वस्तुएं हैं—अन्न, दाल, साग-भाजी, साधारण कपड़ा, औषधियाँ, इमारती सामान, सवारी के लिये वाहन, बाईसिकल, मोटर साईकल मोटर रिक्शा तथा मोटरगाड़ियां। साथ ही हवाई जहाज इत्यादि। सरकार को इन वस्तुओं पर भी कर नहीं लेना चाहिये। मकान और वाहनों पर प्रयोग होने वाले सामान भी कर-मुक्त होने चाहियें।

उदाहरण के रूप में मिट्टी का तेल, डीज़ल तेल और पेट्रोल पर राज्य की ओर से कर नहीं होना चाहिये। ये मनुष्य की नित्य-प्रति के प्रयोय की वस्तुएं हैं। इनको लग्ज़री अर्थात् सुख-भोग के सामान नहीं कहा जा सकता।

सुख-भोग के समान में वे वस्तुएँ आती हैं जिनके बिना जीवन चलने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो। इनमें किसी वस्तु के महंगी अथवा सस्ती होने की बात नहीं। इसमें वस्तु की उपयोगिता का प्रश्न है।

हवाई जहाज की यात्रा अथवा पेट्रोल के मूल्य पर भी निर्माण-कर लगाना, सरकार का अधिकार नहीं है। यह इसलिये कि हवाई जहाजों पर और मोटरों पर भी अधिकांश लोग काम करने के लिये घूमते हैं। केवल सैर के लिये घूमने वालों की संख्या बहुत कम होती है। इस कारण पेट्रोल, मोटर गाड़ी और हवाई जहाजों पर भी राज्य-कर उचित नहीं है।

कागज, कलम, दवात, छापाखाने की मशीनें भी इस कर से मुक्त होनी चाहियें।

बिक्री कर तो किसी भी प्रकार से न्यायसंगत नहीं है। यह बिक्री-कर वस्तु के दाम को बढ़ाने का साधन बन रहा है। यह अयुक्तिसंगत भी है। वास्तव में यह बिक्री-कर नहीं, प्रत्युत खरीद-कर है और इसका बोझा जन-जन पर पड़ता है। दुकान के स्वामी पर इसका बोझा नहीं होता। बिक्री-कर वस्तु के दाम पर पड़ता है, न कि माल बेचने पर।

वैसे हम समझते हैं कि आयकर की निम्न सीमा और नीची होनी चाहिये जिससे अधिक से अधिक नागरिक राष्ट्र के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझें। साथ ही इसका दर भी कम होना चाहिये।

यदि पाँच हजार वार्षिक से अधिक आय पर दो प्रतिशत दर से कर आरम्भ हो तो कोई हानि नहीं। इसका अभिप्राय होगा कि १०,००० वार्षिक आय पर एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सौ रुपये वार्षिक कर होगा।

प्रश्न किया जा सकता है कि अच्छी आय वालों को राहत क्यों दी जाये ? यह इस कारण कि राज्य (शासन) के अतिरिक्त कार्यों का बोझा धनी लोगों पर ही पड़ना चाहिये। उदाहरण के रूप में शिक्षा का कार्य न तो राज्य का है, न ही इसका बोझा राज्य पर डालना उचित है। स्मरण रहे कि शिक्षा से हमारा अभिप्राय सामान्य शिक्षा (general education) है। तकनीकी शिक्षा तो राज्य का कार्य होने से राज्य के करों से चलनी ही चाहिये।

आजकल राज्य बहुत से ऐसे कार्य, जो राज्य के नहीं हैं, कर रहा है। वस्तुतः वे सब कार्य राष्ट्र के हैं। राष्ट्र को ही वे करने चाहियें। उदाहरण के रूप में प्रौढ़-शिक्षा का कार्य है। यह राज्य का कार्य नहीं, यह राष्ट्र का कार्य है। राष्ट्र को इसका प्रबन्ध करना चाहिये। इसी प्रकार पिछड़े वर्गों को उन्नत करना है। यह कार्य भी राज्य का नहीं, वरन् राष्ट्र का कार्य है।

यह तथा अन्य इसी प्रकार के कार्य जो राज्य के नहीं हैं, राष्ट्र किस प्रकार कर सकेगा, यह हम पृथक्-पृथक् अध्यायों में बतायेंगे। यहाँ हम राज्य की अर्थ-व्यवस्था की विवेचना कर रहे हैं। राज्य के अन्धाधुन्ध कर लगाने पर प्रतिबन्ध होना चाहिये, जिससे राष्ट्र की अर्थव्यवस्था सरलता से और बिना राष्ट्र के सामर्थ्य को हानि पहुंचाये, चल सके।

---

# पंचम अध्याय

## अर्थ-व्यवस्था और शासन जारी—२

उद्योगपतियों और व्यापारियों में प्रतिस्पर्धा एक स्वाभाविक और उन्नत करने वाली प्रक्रिया है। हमारा अभिप्राय है कि निर्मित माल के मूल्य में तथा उसकी श्रेष्ठता में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा होने देना एक हितकर प्रक्रिया है। इसकी स्वीकृति होनी ही चाहिये। इसका अभिप्राय है कि एक वस्तु के निर्माण-केन्द्र अथवा बिक्री के अनेक केन्द्र हों तो हानि नहीं। यह लाभ की बात है। स्वस्थ प्रतिस्पर्धा उन्नति का मार्ग है।

जहाँ उस प्रतिस्पर्धा में कुटिलता, धोखाधड़ी अथवा झूठ इत्यादि सम्मिलित हों, वहां राज्य जो शान्ति-व्यवस्था का संरक्षक है, उनको ऐसा करने से रोक सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जहां किसी भी उद्योग अथवा व्यापार में अधर्मयुक्त व्यवहार का समावेश होने लगे, वहां राज्य अपने स्वाभाविक अधिकार से हस्तक्षेप कर सकता है। परन्तु किसी व्यक्ति को कोई भी कार्य करने से मना करना राज्य का अधिकार नहीं है। विशेष रूप में जहां राज्य का धन न लगता हो।

राष्ट्र का नियंत्रण राज्य के द्वारा ही हो सकता है। कारण यह कि देश में धर्म-व्यवस्था (rule of law) स्थापित करना राज्य का कार्य है। राष्ट्र ने ही इस कार्य के लिये राज्य को नियुक्त किया है। परन्तु धर्म-व्यवस्था का अभिप्राय अधर्म के चलन को रोकना है न कि धर्म के चलन का मार्ग अवरुद्ध करना।

अतः, हमारा मत है उद्योग और व्यवसाय में लायसेंसों की प्रथा बंद होनी चाहिये। कोई भी व्यक्ति किसी भी कार्य को करने की पूर्ण स्वतंत्रता रखता है जब तक उसका कार्य धर्म (law) के नियमों के विपरीत न हो। धर्म-व्यवस्था (law and order) नियत करने का अधिकार राज्य के पास नहीं। यह राष्ट्र की एक पृथक् संस्था का काम है। राज्य तो उस संस्था द्वारा बनाये धर्म के नियमों का पालन ही कर सकता है। यह बात कि राष्ट्र क्या और किस प्रकार का नियंत्रण उद्योग तथा व्यापार पर रखेगा, हम राष्ट्र के कार्यों की व्यवस्था के विषय पर लिखते हुए बतायेंगे। यहां हम राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में राज्य के हस्तक्षेप के विषय पर लिख रहे हैं। हमारा मत है कि स्वस्थ प्रतिस्पर्धा उद्योग और व्यापार में होनी, न केवल स्वाभाविक है, वरन् राष्ट्र की उन्नति में सहायक भी है।

इस प्रतिस्पर्धा में ग्राहक निर्णायक हो, न कि सरकारी अधिकारी। यह भय प्रकट किया जाता है कि व्यापारियों और उद्योगपतियों में प्रतिस्पर्धा स्वस्थ (उचित स्तर की) रहेगी ही नहीं, क्योंकि उद्योगपति और व्यापारी का कार्य स्वहित पर निर्भर होता है। हम समझते हैं कि यह स्वहित ही दुकानदार और उद्योगपति को अपना माल सुदृढ़, सुन्दर और सुखद बनाने में सहायक होगा। इस प्रतिस्पर्धा में किसी प्रकार की धोखा-धड़ी होने से रोकना चाहिये और यह करना राज्य का कार्य है। यह इस कारण कि राज्य की स्थापना ही धर्म (law) की स्थापना के लिये की गयी है।

चौथी बात जो हमने सरकारी हस्तक्षेप की बतायी है, वह कारखाने का और व्यापार संगठनों का बड़ा-बड़ा होना है। यह आज के काल की प्रवृत्ति है। इसका आरम्भ पूंजीपतियों ने किया था और कार्लमार्क्स द्वारा इसका विरोध होने पर भी यह कम्यूनिस्ट देशों में बहुत बड़ी सीमा तक स्वीकार कर लिया गया है। अब यह कम्यूनिस्ट देशों का एक प्रवहन हो गया है कि बड़े-से-बड़े कारखाने बनाये जायें और उनमें अधिक से अधिक विषम मशीनें लगाई जायें।

हमारा मत है कि मशीनों के प्रयोग की भी एक सीमा है। सीमा से अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इनका प्रयोग किया गया तो निर्माण-मूल्य सीमा से अधिक होने लगेगा। मानव शरीर एक सब से सस्ता यंत्र है। मनुष्य इससे सस्ता यंत्र अभी निर्माण नहीं कर सका। शरीर रूपी मशीन की टूट-फूट की मुरम्मत का प्रबन्ध भी शरीर के भीतर ही उपस्थित है। यदि इसका प्रयोग सीमा के भीतर और ठीक ढंग से किया जाये तो इसको चालू रखने का खर्च और इसकी टूट-फूट के मुरम्मत का खर्चा अति न्यून होगा।

मानव मशीन की गति निर्मित यंत्रों से बहुत कम होती है। इस गति को उस सीमा तक बढ़ाने के लिये मशीन का प्रयोग किया जा सकता है, जहां तक वह मशीन मानव के कार्य की गति को बढ़ाये। मशीन को इतना बड़ा नहीं बनाना चाहिये कि उसकी टूट-फूट मानव शरीर की टूट-फूट की मुरम्मत से अधिक महंगी हो जाये।

हमारा अभिप्राय यह है कि मशीन कार्य करने में सरल और फिर बिगड़ने पर सुधारने में सरल होनी चाहिये। मशीन एक ही व्यक्ति से चलाई जाने वाली और टूटने पर कर्मचारी द्वारा स्वयं ही मुरम्मत की जाने योग्य होनी चाहिये।

चर्खा इसका एक उदाहरण है। कपड़ा सीने की मशीन दूसरा उदाहरण है। इसी प्रकार कपड़ा बुनने की पावरलूम चलने वाली मशीन है। हमारा आशय है कि मशीन का प्रयोग तब ही करना चाहिये जब मशीन को चलाना और उसको चालू रखना मशीन का स्वामी स्वयं ही कर सके। दस्तकारी में व्यक्तिगत प्रयास को प्रोत्साहन देना चाहिये।

इसके लिये 'टैक्नीशियनों' को ऐसी मशीनें निर्माण करने पर लगाना चाहिये जो एक कर्मचारी स्वयं ही चालू रख सके। मशीन सरल, सीधी, सुगमता से खोलने और फिट की जाने योग्य हो, जिससे उस पर काम करने वाला किंचित् प्रशिक्षण के उपरान्त उसका प्रयोग कर सके। भले ही वह मशीन विद्युत संचालित हो, परन्तु हो एक व्यक्ति से चलाये जाने और मुरम्मत इत्यादि की जाने योग्य।

यह है हमारा विचार, जब हम कहते हैं कि बड़े-बड़े कारखाने नहीं होने चाहियें। ऐसा करने से जहां बड़े-बड़े पूंजीपति निःशेष हो सकेंगे, वहां सरकार भी उद्योगपति बनने से रुक जायेगी।

यह कहा जाता है कि इस प्रकार मानव-परिश्रम व्यर्थ जायेगा। यह गलत है। अपना अनुभव हमने ऊपर बताया हैं कि जितनी बड़ी मशीन होंगी, उनका निर्माण-मूल्य, उस मशीन को चालू रखने का खर्च तथा उसके बिगड़ जाने पर उसकी मुरम्मत का खर्चा इतना पड़ जाता है जो उस बड़ी मशीन की बढ़ी हुई उपज को भी महंगा कर देता है।

इसके अतिरिक्त बड़ी-बड़ी मशीनों से बेकारी में वृद्धि होती है और वह राष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के लिये घातक है। चाहे तो ये बड़ी-बड़ी मशीनें उद्योगपति चलायें और चाहे कोई राज्य चलाये, ये त्रुटियां सदा उनमें निहित हैं।

उद्योगपति और राज्य भी जब स्वयं उद्योगपति बनता है तो यह बड़े पैमाने पर ही काम करना पसन्द करता है। इसमें चोटी के कर्मचारी कम और निम्न वर्ग के कर्मचारी अधिक होते हैं।

बड़ी-बड़ी दस्तकारियों, बड़े-बड़े व्यापार केन्द्रों और बड़े-बड़े फार्मों से तस्करी को प्रोत्साहन मिलता है तथा माल का उपजाऊ मूल्य (Production cost) अधिक होता है। माल बहुतायत में बन जाने से और बेकारी बढ़ जाने से माल की खपत अपने देश में कम होने से विदेशों में माल सस्ते मूल्य पर फेंकना पड़ता है।

खेती-बाड़ी, उद्योग और व्यापार का विकेन्द्रीयकरण होना चाहिये। इसके लिये ही सब तकनीकी प्रशिक्षण केन्द्रों में छोटी-छोटी मशीनों के निर्माण को प्रोत्साहन देना चाहिये। लक्ष्य यह होना चाहिये कि ऐसी मशीनें हों, जो चाहे तो हाथ से चलें, चाहे बिजली से, इतनी बड़ी ही हों जो एक ही कर्मचारी सहज ही चला सके, खोलकर फिट कर सके और जिसके छोटे-मोटे दोष स्वयं ठीक कर सके।

इससे धन का एक स्थान पर एकत्रित होना रुक जायेगा।

पांचवी समस्या है कर्मचारियों और मालिकों के झगड़े। हम समझते हैं कि छोटी-छोटी दस्तकारियां तथा उद्योग, जैसा कि ऊपर हमने बताया है, इस प्रकार के झगड़ों का मूलोच्छेदन करने की सामर्थ्य रखते हैं। इस पर भी कुछ एक स्थानों पर बहुत से कर्मचारी इकट्ठे काम करने आवश्यक हो जाते हैं। यह राजकीय कार्यालयों में तो होगा ही, अन्य बड़े व्यवसायिक संस्थानों में भी हो सकता है। वहां कर्मचारियों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपने हितों की, मिलकर रक्षा करें। इसके लिये उनको अपनी 'यूनियनें' बनाने का अधिकार है। यह बुरी बात भी नहीं है। प्रत्येक वर्ग को अपने हितों की रक्षा करने का अधिकार और प्रभावी अधिकार मिलना चाहिये।

हमारा तो कहना है कि वर्तमात राज्य जान-बूझकर कर्मचारियों की यूनियनों को प्रभावित अधिकार नहीं देते। भला यह कोई अधिकार है कि झगड़े का नोटिस प्रभावी पग उठाने से पन्द्रह दिन पहले दिया जाये ? इस नोटिस की अवधि में तो बहुत कुछ अंधेरगर्दी हो सकती है। हम समझते हैं कि पांच-छः घंटे का नोटिस पर्याप्त है। इन पांच-छः घंटों में तो बहुत कुछ सुना-विचारा जा सकता है और फिर उस पर कार्यवाही की जा सकती है।

इस पर भी हड़ताल करना अर्थात् काम बंद करना सर्वथा अनुचित है। काम बंद करने की आवश्यकता कर्मचारी इस कारण अनुभव करते हैं क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उनकी नोटिस की अवधि व्यतीत हो जाने पर भी कुछ कार्यवाही नहीं की जाती।

हमारा सुझाव इस विषय में यह है कि प्रत्येक ज़िला में लेबर कमिश्नर हो और अपने क्षेत्र में उसका उतना ही अधिकार हो, जितना अधिकार डिप्टी कमिश्नर का होता है। लेबर कमिश्नर 'ज्यूडीशियल औफिसर' (न्ययायकर्ता के पद का अधिकारी) होना चाहिये। ज़िलह के कर्मचारियों की, मालिकों अथवा अफसरों की शिकायत (आरोप-पत्र), ज़िलह अधिकारी (labour commissioner) के पास पहुँचे तो यह नियम हो कि रिपोर्ट के वहां पहुंचते ही एक-दो घंटे के भीतर ही कमिश्नर घटनास्थल पर पहुंच मामले को अपनी फाइल पर लेकर जांच करे और यदि झगड़ा निपटाने में कुछ समय लगने वाला हो तो एक अन्तरिम आज्ञा देकर काम चालू कर दे। उसकी आज्ञा को न मानना कोर्ट की मानहानि समझी जानी चाहिये और कोर्ट का उसको दंड देने का अधिकार हो।

इस चलते-फिरते न्यायालय के निर्णय की अपील उच्च न्यायालय में की जा सके, परन्तु इसकी अवज्ञा न हो सके। बस हड़तालें रोकने का यही ढंग है।

कर्मचारी मालिकों अथवा अफसरों के भी निर्णय इसी चलते-फिरते न्यायालय के अधीन होने चाहियें। केवल अति संगीन मामलों में ही कोर्ट, कारखाना कुछ दिन के लिये बंद करने की आज्ञा दे सके।

काम बंद करने के अधिकार न तो कर्मचारियों को, न ही कारखाने बंद करने का अधिकार मालिकों तथा कार्यालय के अधिकारी को हों।

हड़ताल करना कर्मचारी का अधिकार नहीं। हां, काम छोड़ दूसरे स्थान पर काम करना कर्मचारी का अधिकार है। इसी प्रकार कारखाना चालू कर काम बंद करना मालिक का अधिकार नहीं। हमारा अभिप्राय तालाबंदी (lock out) से है। हां, उद्योग अथवा व्यापार बंद करना प्रत्येक मालिक का अधिकार है।

कारखाने के मालिक अथवा किसी व्यवसाय केन्द्र के मालिक कार्य को चलाये अथवा बंद करे, यह उसका अधिकार है, परन्तु काम बंद करते समय, ऐसी स्थिति में कर्मचारी के प्रति उनका जो कर्तव्य है उसका पालन करना आवश्यक है।

इस प्रकार किसी मालिक अथवा अधिकारी के अधीन काम करना अथवा न करना, सेवक का अधिकार है, परन्तु काम बंद कर निष्क्रिय बैठने का अधिकार उसे नहीं दिया जा सकता।

यह तब ही सम्भव हो सकता है जब विवादों का निर्णय उक्त विवाद उत्पन्न होने के तीन घंटे के भीतर ही लेबर कमिश्नर के अधीन करने का प्रबन्ध हो। पक्का निर्णय न हो सके तो अस्थाई आज्ञा वह दे दे, जिससे कार्य चलता रह सके। न्याय का वितरण अविलम्ब होना चाहिये।

नौकरियां निर्माण करना राज्य का कार्य नहीं। यह राष्ट्र का कार्य है। यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इसे राज्य का कर्त्तव्य समझा गया तो राज्य बिना कार्य के भी कर्मचारी नियुक्त करता चला जायेगा। वर्तमान समाजवादी सरकार ने इसे राज्य का कार्य नियत किया हुआ है। यह अनर्थकारी है। वर्तमान युग में केन्द्र और राज्यों में घाटे के बजट का सबसे बड़ा कारण यह है। राज्य अपने कार्य क्षेत्र से बाहर पांव पसार रहा है। समाज-सेवा राज्य का कार्य नहीं, यह राष्ट्र का कार्य है।

राज्य का सम्बन्ध देश में शान्ति-व्यवस्था रखना, देश की बाहरी आक्रमणों से रक्षा करना और इन दो कार्यों के साथ सम्बन्ध रखने वाले जो भी कार्य हों, उनको सम्पन्न करना है। इसके अतिरिक्त राज्य का कुछ भी कार्य नहीं। केवल इन कार्यों के लिये ही राज्य को धन तथा जन की सहायता राष्ट्र से मिलनी चाहिये।

यह राज्य का कार्य नहीं कि पिछड़े वर्गों को लाकर उन्नत वर्गों में खड़ा कर दे। न ही यह राजनीति का विषय है। इसी प्रकार यह राज्य का कार्य नहीं कि किसी मज़हबी समुदाय की रक्षा का प्रबन्ध करे। राज्य की दृष्टि में न कोई मज़हब है, न कोई वर्ग है। सब देश के रहने वाले देश के नागरिक हैं और समान हैं।

नागरिकों के कुछ कर्तव्य हैं। जब कोई भी मज़हबी घटक अथवा किसी भी वर्ग (ethnic group) का व्यक्ति उन कर्त्तव्यों का पालन करता है, तब वह राज्य की दृष्टि में सबके समान हो जाता है। राज्य न तो किसी को अधिक मान दे सकता है, न ही वह किसी को धकेल कर पीछे कर सकता है।

यह जो अछूतों को अथवा पिछड़े हुए व्यक्तियों को, केन्द्रीय राज्य अथवा प्रादेशिक राज्य विशेष अधिमान का स्थान दे रहे हैं, वह अनाधिकार चेष्टा है। वे ऐसा कर भी नहीं सकते। इस पर भी यदि राज्य ऐसा करने का यत्न करेगा तो वह किसी दूसरे मज़हब अथवा वर्ग को पीछे धकेलने का यत्न करेगा। ऐसा हो रहा है। ब्रिटिश सरकार ने अपने स्वार्थ के लिये ऐसा किया था, परन्तु इससे ब्रिटिश सरकार का स्वार्थ सिद्ध नहीं हुआ।

सन् १६८० से अंग्रेजी सरकार ने मुसलमानों को अधिमान देने का निश्चय किया था। उस निश्चय पर कानूनी मुहर सन् १६०६ में लार्ड मिन्टो ने लगाई और फिर सन् १६०६ के सुधार कानून में उसने इस विचार को स्थान दिया था। परन्तु क्या इससे अंग्रेजी सरकार अपनी स्थिति हिन्दुस्तान में सुदृढ़ कर सकी थी? वर्तमान भारत सरकार और ब्रिटिश सरकार में वैमनस्य इसी भेद नीति का परिणाम है और भारत का रूस की ओर झुकने में भी ब्रिटिश सरकार की इस नीति का हाथ है।

कहने का अभिप्राय यह है कि मुसलमानों को अधिमान देने का लाभ ब्रिटिश सरकार को कुछ नहीं हुआ। यदि यह कहा जाये कि ब्रिटिश सरकार बदनाम हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


है तो अधिक ठीक होगा। कांग्रेस ने भी सन् १९१६ में मुसलमानों को अधिमान देकर स्वराज्य प्राप्त करने का यत्न किया। परन्तु क्या हुआ? काँग्रेस की इस दूषित नीति से कांग्रेस को लाभ नही मिला। यदि द्वितीय विश्व युद्ध हिटलर की मूर्खता और उजड्डता के कारण न होता तो हिन्दुस्तान स्वाधीन न हो पाता। अधिक से अधिक गोरखधंधा राज्य यहां बन जाता और इससे अधिक कुछ न होता।

हमारा विचार है कि मुसलमानों को अधिमान देने की नीति से ब्रिटिश सरकार को किंचित् मात्र भी लाभ नहीं हुआ। न ही अछूतों को अथवा मुसलमानों को लाभ हुआ है।

कांग्रेस ने इन समुदायों को अधिमान का पद देने का निश्चय किया है। इस अधिमान का पद देने में महात्मा गांधी अथवा पण्डित मोतीलाल नेहरू का विशेष हाथ था। हमारा निश्चित मत है कि दोनों के विचार के राज्य की स्थापना नहीं हो सकी। जो कुछ भारत में हुआ अथवा हो रहा है, वह उन दोनों के विचार से सर्वथा भिन्न है।

अब भी, हमारा निश्चित मत है कि भारत का राज्य जो अछूतों अथवा मुसलमानों को अधिमान का स्थान देना चाहता है, भारी भूल कर रहा है और इसका लाभ न तो देश को होगा, न ही राज्य में सत्ताधीश दल को।

इसमें अपार हानि होने की सम्भावना है। जैसे ब्रिटिश सरकार की नीति का फल पाकिस्तान हुआ है और उस पाकिस्तान में पिछले तैंतीस वर्ष से अधिक काल तक तानाशाही राज्य रहा है, इसी प्रकार भारत का वर्तमान राज्य अछूतों और मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यक समुदायों को अधिमान का पद देने में भारी भूल कर रहा है और इसके भयानक परिणाम होने की सम्भावना है।

किसी स्थान के पिछड़े वर्ग को आगे लाने का कार्य राज्य का नहीं, वरन् राष्ट्र का है। यह राष्ट्र देखेगा कि वह किस प्रकार इन पिछड़े वर्गों को आगे लाये। यदि ऐसा करने में कोई समुदाय दूसरे पर अन्याय करे तो फिर उसमें राज्य न्यायालयों के द्वारा हस्तक्षेप कर सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्ड तीन

# प्रथम अध्याय

## संसद राष्ट्र है अथवा राज्य ?

राष्ट्र देश का स्वामी है। राज्य (शासन) उसका एक कर्मचारी है। स्वामी और कर्मचारी के कार्यों में अंतर होता है। यह अंतर उनके गुणों में भी होता है। गुणों से कर्म निश्चय होते हैं और कर्म देखकर कर्त्ता के गुणों का ज्ञान हो सकता है।

जब गुण-हीन व्यक्ति कोई कर्म करने लगता है, तब प्रायः गुण के विरुद्ध कर्म होता देखा जाता है। परन्तु यह अपवाद की अवस्था है। इनसे किसी सिद्धांत का निश्चय नहीं हो सकता।

अभिप्राय यह है कि संसद के कर्म-विकर्म देखकर संसद के विषय में यह निर्णय करना कि यह राष्ट्र का स्थानापन्न है अथवा राज्य का, सम्भव नहीं। इसके लिये हमें संविधान में संसद के सम्बन्ध में धाराओं का अध्ययन करना होगा। संविधान संसद के क्या गुण और कर्म वर्णन करता है, उसे जानकर ही हम यह कह सकते हैं कि संसद राष्ट्र है अथवा राज्य है।

पहले संसद के निर्माण के विषय में ही विचार करना चाहिये। संविधान में लिखा है—

(१) संसद के दो सदन हैं। एक लोकसभा कही जाती है और दूसरी राज्य सभा। दोनों के निर्माण भिन्न-भिन्न ढंग से होते हैं।

(२) लोकसभा के सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों से चुन कर आते हैं। सवा पांच सौ के लगभग चुनाव क्षेत्र हैं और प्रत्येक क्षेत्र से एक-एक प्रतिनिधि निर्वाचित होकर लोकसभा में आता है। निर्वाचन सीधे मतदान द्वारा होता है और मतदान गुप्त होता है।

(३) राज्य सभा के सदस्य दो प्रकार से चुने जाते हैं। बारह सदस्य ज्ञान-विज्ञान, कला, साहित्य इत्यादि क्षेत्रों में गुणवान व्यक्तियों में से राष्ट्रपति मनोंनीत करता है। शेष सदस्य जिनकी संख्या २३८ तक होती है, भिन्न-भिन्न राज्य विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। इनका चुनाव विधान सभा के सदस्यों द्वारा एक परिवर्तनीय मत (single transferable vote) द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


होता है।

यह है संक्षेप में संसद के निर्माण का ढंग। इस प्रकार लोकसभा और राज्य सभा, दोनों देशवासियों की प्रतिनिधि सभाएं हैं। यद्यपि राज्यसभा के निर्माण के विषय में हमें यह व्यर्थ की दुहरी परत ही प्रतीत होती है; इस पर भी इस बात को तो मानना ही पड़ेगा कि दोनों सदनों में देशवासियों के प्रतिनिधि हैं। अत: ये राष्ट्र के प्रतिनिधि हैं।

मतदाता सबके सब राष्ट्र के लक्षणों से युक्त हैं अथवा नहीं, यह एक पृथक् प्रश्न है। जो कोई भी आज देशवासी माने जाते हैं, लोकसभा और राज्यसभा उनकी प्रतिनिधि सभाएं हैं। इस कारण, संसद राष्ट्र सभा कही जा सकती है। जैसा-कैसा भी राष्ट्र भारत में है, ये दोनों सदन उसका प्रतिनिधित्व करते हैं।

अत: अब संसद सदस्यों की योग्यता के विषय में जानना चाहिये। इस विषय में संविधान की धारा ८४ इस प्रकार है—

(अ) संसद सदस्य बनने के लिये प्रत्याशी को देश का नागरिक होना चाहिये;

(आ) राज्य सभा का सदस्य बनने के लिये आयु कम से कम तीस वर्ष और लोकसभा का सदस्य बनने के लिये आयु कम से कम पच्चीस वर्ष होनी चाहिये।

संविधान में संसद सदस्य बनने की अन्य कोई शर्त नहीं है। संसद कुछ भी कानून बना सकती है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह सर्व-अधिकार सम्पन्न संसद अपने सदस्यों के गुणों की सीमा को बढ़ा नहीं सकी। कोई भी पच्चीस वर्ष का वयस्क व्यक्ति लोकलाभ और राज्य की विधानसभा का सदस्य बन सकता है। उसके लिये साक्षर होने की भी शर्त नहीं है।

अब तनिक संसद सदस्यों के कार्यों के विषय में भी देख लेना चाहिये।

(१) प्रत्येक संसद सदस्य को सदस्यता का कार्य-भार अपने ऊपर लेने से पहले एक शपथ लेनी होगी। वह शपथ इस प्रकार है—

मैं राज्य सभा (अथवा लोकसभा) में निर्वाचित अथवा नामांकित होने पर परमात्मा की शपथ लेकर (अथवा सत्य हृदय) यह स्वीकार करता हूं कि मैं देश के संविधान में, जो कानून के अनुसार स्वीकार हो चुका है, पूर्ण आस्था रखता हूं और देश की स्वतंत्रता तथा देश के ऐक्य का पक्ष लूंगा और मैं उस स्थान के कर्त्तव्य का पालन करूँगा जिसके लिये मैं इस सदन में आया हूं।*

---

* I, A. B. having been elected (or nominated) a member of the Council of State (of the House of the People) do swear in the name of God that I will bear true faith and

solemnly affirm

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इन सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि संसद राष्ट्र सभा है।

परन्तु ससंद के बहुसंख्यक दल का निर्वाचित नेता देश का प्रधानमंत्री होता है। वह एक मंत्रीमंडल नियुक्त करता है, जो देश का राज्य-कार्य चलाता है।

इन मंत्रियों में एक गृहमंत्री होता है जो देश में शान्ति-व्यवस्था स्थापित करने का कार्य करता है।

मंत्रियों में एक सुरक्षा मंत्री होता है जो देश की रक्षा का प्रवन्ध करता है।

इसी प्रकार देश के प्रवन्ध के सब कार्य मंत्रीगण करते हैं। यह मंत्रिमंडल देश का शासन करने वाला अंश है।

विचारणीय यह है कि मंत्री किसके अधीन हैं। वस्तुत: ये संसद के अधीन हैं। दिन-रात इनके कार्यों पर संसद के सदस्य टीका-टिपण्णी करते रहते हैं। कहीं बहुसंख्यक सदस्य किसी मंत्री के कार्य को दोषपूर्ण समझें तो प्रधानमंत्री को विवश हो उसके स्थान पर दूसरा मंत्री नियुक्त करना पड़ता है।

इस सबका अर्थ यह है कि प्रधानमंत्री राज्य का मुख्याधिकारी होता है। जब तक संसद के बहुसंख्यक सदस्य उसके कार्य को पसन्द करते हैं, तब तक राज्य-कार्य उसकी रुचि के अनुसार चलता है।

अत:, इसका अर्थ यह बनता है कि राष्ट्र सभा (संसद) में बहुसंख्यक सदस्यों का प्रतिनिधि प्रमुख शासक होता है और जब तक बहुसंख्यक सदस्य प्रधानमंत्री का समर्थन करते हैं, तब तक प्रधानमंत्री राज्य करता है।

यह प्रवन्ध प्रत्यक्ष रूप में तो ठीक ही प्रतीत होता है। संसद राष्ट्र का प्रतीक है और संसद के बहुसंख्यक सदस्यों का प्रतिनिधि शासक है। अर्थात् वह प्रतिनिधि संसद द्वारा राज्य कार्य के लिये नियुक्त समझा जाता है।

परन्तु इस प्रवन्ध में एक भारी दोष है। संसदों के निर्वाचन के बाद बहुसंख्यक दल का नेता शासक होगा, यह तो ठीक है, परन्तु वह राज्य कार्य के योग्य भी है अथवा नहीं, इसके लिये कोई शर्त नहीं है।

संसद के निर्वाचनों के समय, विशेष रूप में लोकसभा के सदस्यों के निर्वाचन में, किसी भी सदस्य के लिये कोई भी गुण जिससे उसमें राज्य करने की योग्यता का भास हो, निश्चय नहीं। बहुसंख्यक दल के नेता की योग्यता उस

---

allegiance to the Constitution of India as by law established, that I will uphold the sovereignty and integrity of India and that I will faithfully discharge the duty upon which I am about to enter

Schedule-III, 'Constitution of India.'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दल में सर्वप्रियता के अतिरिक्त अन्य कोई निश्चित नहीं है। उसे अपनी सर्वप्रियता की निधि की ही रक्षा करनी होती है। राज्य कार्य में उसकी कुशलता है अथवा नहीं है, यह आवश्यक नहीं।

यह सर्वप्रियता स्थिर रखने के लिये बहुसंख्यक दल को राज्य करने की कुशलता प्रकट करने से अधिक उन लोगों को सन्तुष्ट करने की कुशलता का प्रदर्शन करना पड़ता है जिनके अधीन अथवा प्रभाव में मतदाता होते हैं।

वर्तमान प्रबन्ध की यही विडम्बना है। शासक (प्रधानमंत्री) संसद में बहुसंख्यक सदस्यों में सर्वप्रिय होना चाहिये। संसद सदस्यता किसी योग्यता के आधार पर नहीं मिलती, केवल किसी क्षेत्र में अधिक मत प्राप्त करने से मिलती है।

प्रायः लोग धर्म के नियंत्रण से अधिक मन की कामनाओं से प्रेरित होते हैं। परिणामस्वरूप कोई भी व्यक्ति जो जन-जन की कामनाओं को पूर्ण करने का वचन देने में सफल हो सकता है, वह संसद सदस्य बन सकता है और ऐसे सदस्य अपने में से एक को प्रधानमंत्री बना लेते हैं।

प्रधानमंत्री का एक ही गुण है। वह यह कि जन-जन की कामनाओं की पूर्ति का वचन देकर निर्वाचित सदस्यों की कामनाओं की पूर्ति का आश्वासन दे सके।

इस दूषित घेरे में फंसा हुआ शासन दोषों से कभी भी मुक्त नहीं हो सकता।

कभी कोई धर्म के अर्थ को समझने वाला जन-जन पर ऐसे छा जाये जैसे कभी महात्मा गांधी थे, अथवा कुछ समय के लिये बाबू जयप्रकाश नारायण थे तो वे किसी योग्य को प्रधानमंत्री बनाने में सहायक हो सकते हैं और देश को श्रेष्ठ राजा मिल सकता है।

परन्तु इन दोनों महापुरुषों के कार्यों और निर्वाचनों से यही विदित होता है कि उनकी लोकप्रियता राज्य करने की योग्यता के व्यक्ति को पहिंचानने के कारण नहीं थी, वरन् किसी अन्य कारण से थी।

महात्मा गांधी अत्यन्त लोकप्रिय थे और एक सभ्य देश के पढ़े-लिखे, अनपढ़, धनी तथा निर्धनों सभी के भव्य नेता बन बैठे थे। उन्होंने देश का प्रधानमंत्री अर्थात् राजा बना दिया जवाहरलाल नेहरू को।

फिर श्री बाबू जयप्रकाश नारयण देश में बहुत विख्यात हुए और उन्होंने देश का शासक बना दिया मोरारजी देसाई को। दोनों निर्वाचित व्यक्ति ही थे। पंडित जवाहरलाल के काल में देश में दुर्व्यवस्था में वृद्धि हुई थी और मोरारजी देसाई के काल में तो देश में कोई व्यवस्था ही नहीं रही थी।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि शासक के निर्वाचन का यह ढंग ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नहीं है। इसमें दोष इस प्रकार हैं—

(१) प्रधानमंत्री एक संसद सदस्य होता है, जिसके संसद सदस्य बनने की केवल एक ही शर्त है कि वह लोकसभा में बहुसंख्यक दल का सर्वप्रिय नेता हो।

(२) संसद सदस्य बनाने के लिये बहुत धन व्यय करने की आवश्यकता रहती है। सरकारी कानून से, सदस्य बनने के लिये तीस हजार की स्वीकृति थी जो अब एक लाख कर दी गई है। यथार्थ में एक संसद सदस्य को अपने निर्वाचन क्षेत्र में घूमने-फिरने और अपना नाम प्रख्यात करने के लिये लाखों व्यय करने पड़ते हैं। लोकसभा के एक सामान्य सदस्य के लिये दिल्ली जैसे सीमित निर्वाचन क्षेत्र के होने पर भी कई-कई लाख व्यय करने पड़ते हैं। यह शासक पद को प्राप्त करने का गुण नहीं, अवगुण है।

(३) लोकसभा में भी बहुसंख्यक सदस्यों में प्रियता प्राप्त करने के लिये उन सदस्यों को, जो लाखों व्यय कर लोकसभा में आये हैं, प्रसन्न रखना पड़ता है। यदि वे अपनी वाक्पटुता से, भ्रमोत्पादक व्यवहार और वाक्यों से और इनसे बढ़कर पार्टी के सदस्यों के पेट भरने में सहायक न हो तो वह अपना नेतृत्व नहीं रख सकता। यही बात श्री मोरारजी देसाई के साथ हुई थी। वह यह नहीं समझ सके कि जनता पार्टी के सदस्यों को भावी निर्वाचनों में लाखों रुपये व्यय करने का समय समीप आ रहा प्रतीत हो रहा है, और वह इन लाखों को एकत्रित करने में किसी प्रकार का साधन नहीं बन रहे थे।

ऐसे सरल-चित्त प्रधानमंत्री को छलने के लिये भिन्न-भिन्न सदस्यों ने भिन्न भिन्न उपाय अपनी बुद्धि अनुसार स्वीकार किये। किसी ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की निन्दा करने से अपना भविष्य सुरक्षित करना चाहा, किसी ने किसान की भलाई का ढोंग खड़ा करना चाहा, किसी ने इन्दिरा गाँधी के चातुर्य को अपने पक्ष में करना उचित समझा और किसी ने धन एकत्रित कर भावी निर्वाचन में अपनी स्थिति सुदृढ करनी उचित समझी। मोरारजी इन सबकी महत्त्वाकांक्षाओं को पूर्ण नहीं कर सके और बेचारे राजनीति से सन्यास लेने पर विवश हो गये।

इस पुरानी कहानी को यहां पुनः दुहराने का प्रयोजन यह स्पष्ट करना है कि वर्ततान ढंग से राजा का निर्वाचन दोषपूर्ण है और उसी दूषित प्रक्रिया के कारण देश की दुर्दशा हो रही है।

लोग विस्मय करते हैं कि वर्तमान प्रधानमंत्री के राज्य गद्दी पर बैठते ही देश में शांति व्यवस्था में इतना ज़बरदस्त बिगाड़ क्यों आया है? इसमें प्रधानमंत्री का दोष न भी हो, परन्त प्रधानमंत्री के चुनाव का ढंग तो दोषपूर्ण है ही।

प्रधानमंत्री को यह पद प्राप्त करने के लिये एक प्रबल दल बनाना पड़ता है। उसके लिये धन की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। धन उद्योगपतियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पास है। वे इतने धन-लोलुप होते हैं कि जहां एक रुपया किसी की सहायतार्थ देते हैं तो उसके प्रतिकार में दस प्राप्त करने की लालसा करते हैं। प्रबल दल और जनमानस में उस प्रबलता के प्रभाव को उत्पन्न करने में गुंडागर्दी करने वालों की आवश्यकता भी रहती है।

अतः राजा चुनने की यह प्रक्रिया ग़लत है। इससे कल्याण की आशा नहीं की जा सकती।

इसके अतिरिक्त संसद राज्य कार्य करते हुए धर्म सभा (legislative council) भी है। जो राजा हो, उसे व्यवस्था देने वाला नहीं होना चाहिये। यह कोतवाल के हाथ में कानून बनाने का अधिकार देना होगा।

इसका परिणाम यह हो रहा है कि जब भी सरकार (राज्य) के किसी कार्य को न्यायालय गलत मानते हैं, संसद सरकार के कार्य को ठीक सिद्ध करने के लिए नया कानून पारित कर देती है।

यह प्रक्रिया अति दोषपूर्ण है। लोकसभा के सदस्य जो कानूनी योग्यता का न तो प्रमाण रखते हैं और न रखने की आवश्यकता समझते हैं, वे राजा भी हैं और कानून बनाने वाले भी हो रहे हैं। वही कानून बनाने के अधिकार वाले कोतवाल की बात हो गयी है।

इसी दोष के कारण आपात्-स्थिति में भी संवधान में संशोधन किया गया था। उन संशोधनों में आपात्-स्थिति से सम्बन्धित और आपात्-स्थिति काल से चलने वाले संशोधन ही नहीं किये गये, वरन् भविष्य में आपात्-स्थिति हट जाने पर भी उन संशोधनों को लागू रखने का विचार किया गया। यह एक राज्य का अनाधिकृत कार्य था।

आपात्-स्थिति हटने पर भी मोरारजी देसाई की संसद इस अन्याय और अनाधिकार चेष्टा को मिटा नहीं सकी। इसमें कारण यही है कि देश में हिन्दू ढंग के राष्ट्र की स्थापना नहीं है। वास्तव में इन्दिरा गांधी और मोरारजी देसाई दोनों अंग्रेजी राजनीति की उपज थे और उनके विचार करने का ढंग समान ही था।

हिन्दू राजनीति में शासक धर्म-व्यवस्था देने वाला नहीं होता। शासक स्मृति शास्त्र में अदल-बदल नहीं कर सकता।

यहां लोकसभा और राज्य सभा नाम की दो राष्ट्र सभाएं हैं; परन्तु वस्तुतः वे राज्य हैं और उन्होंने कानून बनाना (धर्म-व्यवस्था देना) भी अपने अधीन कर रखा है। और इस पर विशेषता यह है कि लोकसभा और राज्यसभा में किसी प्रकार के धर्म-ज्ञान (कानून जानने) की शर्त नहीं है।

इस सबका निष्कर्ष यह है कि भारत में संसद राष्ट्र का प्रतिनिधि होते हुए भी राज्याधिकारी चुनने का ढंग ग़लत होने से शासक ग़लत बन रहा है। वर्तमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रबन्ध में संसद का बहुसंख्यक दल राज्य बनाता है जो पूर्ण संसद और राज्य के कान मरोड़ देने का यत्न करता रहता है।

सबसे बड़ी बात यह है कि जो प्रधानमंत्री संसद अर्थात् राष्ट्र सभा का नेता है, वही राजा है और जब तक उसका संसद में बहुमत हो, संसद ही राजा होती है। इस प्रकार राजा और राष्ट्र एक हो रहे हैं।

यह केवल संसद के निर्माण में ही दोष नहीं, वरन् इसके काम के ढंग में भी दोष है। संसद राष्ट्र और राज्य दोनों का कार्य कर रही है। अर्थ-व्यवस्था और शिक्षा इन दोनों पर, संसद अधिकार रखती है। यह अधिकार मंत्रीमंडल अर्थात् राज्य के द्वारा ही होता है और हमने बताया है कि ये दोनों कार्य राज्य के अधीन नहीं होने चाहिएं।

राज्य केवल देश की सुरक्षा और देश में शान्ति-व्यवस्था के प्रबन्ध के लिये नियुक्त संस्थान् है। साथ ही राष्ट्र का राज्य पर नियंत्रण होना चाहिये, जिससे यह कभी स्वयं ही राष्ट्र और राज्य दोनों न बन सके।

इस समय तो मंत्रीमंडल को इतनी सामर्थ्य मिली हुई है कि यह पूर्ण राष्ट्र को निस्तेज कर सकता है। अर्थात् संविधान के किंचित् मात्र दुरुपयोग से राष्ट्र को ताले में बंद कर स्वयं को ही राष्ट्र घोषित कर सकता है।

— —

# द्वितीय अध्याय

## राष्ट्र का अधिकार (शिक्षा)

यह हम बता चुके हैं कि राष्ट्र का कार्य जन संस्थाओं द्वारा और प्रेरणा से चलता है। इसके कार्य दंड-विधान द्वारा संचालित नहीं होते। इसी कारण शिक्षा का कार्य प्रेरणा का कार्य ही है। यह राज्य दंड से नहीं चलना चाहिये। यह चल सकता ही नहीं।

शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य में मानवता को उजागर करना है। यह हिन्दू परंपरा है कि बालक अपने पूर्वजन्म के संस्कारों को लेकर ही वर्तमान जन्म में आता है। इसी कारण बालक-बालक में जन्म से ही भेद देखा जाता है।

इस व्यवस्था को स्वीकार करने में प्रबल युक्ति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह युक्ति द्वारा ही सिद्ध हो सकता है कि जीवित शरीर और मृत शव में कुछ अन्तर होता है। यह अनेक बार देखने में आता है कि शरीर में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हुए बिना, मृत्यु के एक क्षण पहले के शरीर और पीछे के शव में अन्तर आ जाता है।

वेदान्त दर्शन में इस प्रकार युक्ति की गयी है—

इस जगत् में दो प्रकार के पदार्थ देखने में आते हैं। एक जो निश्चल हैं और दूसरे जो चलायमान हैं। वैसे तो जगत में प्रत्येक पदार्थ गतिशील है, परन्तु कभी एक की अपेक्षा दूसरा निश्चल दिखाई देता है। उदाहरण के रूप में एक हॉकी का गेंद हॉकी की ग्राउंड में रखा है। यह गेंद यद्यपि भूमि पर पड़ा है, परन्तु भूमि का अंग नहीं है। इस पर भी यह भूमि से पृथक् गति नहीं करता। भूमि पर स्थित होने से भूमि के साथ पृथिवी की गतियों में भाग ले रहा है, परन्तु भूमि की अपेक्षा यह निश्चल है।

भूमि की अपेक्षा भी यह गतिशील हो सकता है, जब कोई खिलाड़ी अपनी हॉकी-स्टिक से इसे ठोकर मारता है। पहले खिलाड़ी और गेंद एक-दूसरे के अनुपात में स्थिर थे। खिलाड़ी के ठोकर मारने से गेंद गति करने लगता है, खिलाड़ी से दूर होने लगता है।

युक्ति यह है कि भूमि की अपेक्षा गेंद निश्चल था। उसे गतिशील किया है खिलाड़ी ने।

इसी बात को देखकर न्यूटन ने गति के नियमों में वह लिख दिया था कि एक वस्तु जो ठहरी हुई है, वह ठहरी ही रहेगी अथवा जो गति कर रही है, वह स्थिर गति से और सीधी रेखा में गति करती ही रहेगी, जब तक किसी बाहरी शक्ति से उस पर प्रभाव न पड़े। गेंद की अवस्था में हॉकी स्टिक की ठोकर ने उसे गति प्रदान की है।

जब ऐसा है तो ये सूर्य, चन्द्र, पृथिवी इत्यादि नक्षत्र जो इस समय वेग से गति कर रहे हैं, एक समय इनकी गति आरम्भ की गई होगी। इस कारण इनमें गति आरम्भ हुई होगी।

दूसरे, ये गति कर रहे हैं चक्राकार। इस कारण इनकी गति को निरन्तर कोई बाहरी शक्ति प्रभावित कर रही है। हिन्दू विचारकों ने इसे परमात्मा का नाम दिया है।

अब गतिशील पदार्थों में भी दो प्रकार के पदार्थ देखने में आते हैं। एक वे हैं जो सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न और चेतना के गुणों से युक्त होते हैं और दूसरे जो इन गुणों से विहीन होते हैं।

जिन पदार्थों में ये छः गुण (सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न और चेतना)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रहते हैं वे जीवधारी माने जाते हैं अर्थात् उनमें जड़ प्रकृति के अतिरिक्त जीवात्मा की उपस्थिति मानी जाती है। जो कुछ भी इसमें है और जो शरीर में ये छः गुण उत्पन्न कर दे, उसे जीवात्मा का नाम दिया जाता है। इस प्रकार जीवात्मा के ये छः लिंग माने जाते हैं।

तीसरी बात जो जीवात्मा के सम्बन्ध में मानी जाती है वह यह है कि बालक के जन्म के समय यह निर्माण नहीं होता और मृत्यु के समय यह मरता नहीं। इसमें भी युक्ति ही बताती है कि जन्म के समय, बालक-बालक की उपलब्धियों में अन्तर, जीवात्मा के पूर्वजन्म के कर्मों के फल के कारण ही होता है।

ये सब परिणाम तर्कशास्त्र के जाननेवाले बिना किसी वेद, शास्त्र अथवा ग्रन्थ के प्रमाण से भी सिद्ध करते हैं। हिन्दू मस्तिष्क इनको सिद्ध मानता है। वह मानता है कि परमात्मा और प्रकृति के अतिरिक्त एक तीसरा तत्त्व इस जगत् में है। वह तत्त्व एक दूसरे से पृथक् बहुत बड़ी संख्या में है।

हिन्दुओं में एक मत ऐसा भी है जो इस जीव तत्त्व को परमात्मा की माया के मोह में फँसा हुआ एक अंश समझता है। इस पर भी वह यह तो मानता है कि जब तक यह परमात्मा की माया के मोह में फँसा रहता है, तब तक यह, भले ही भ्रम से कहो, परमात्मा से पृथक् सुख, दुःख आदि भोग भोगता है।

हिन्दुओं में एक जनसमूह ऐसा भी है जो समझता है कि जीवात्मा प्रकृति का अंग ही है। जो पदार्थ शरीर में है, वही जीवात्मा में है। इस पर भी ये लोग भी मानते हैं कि जब तक वह शरीर में सक्रिय है तब तक उसको सक्रिय रहने देना चाहिये और वह अपना कर्मों का फल भोगता है।

इस प्रकार जीवात्मा की उपस्थिति, स्थाई अथवा अस्थाई मानी जाती है और उसके किये कर्म उस पर प्रभाव डालते हैं।

अतः हम समझते हैं कि जीवात्मा, पुनर्जन्म और कर्मफल का सिद्धान्त हिन्दू विचार का अभिन्न अंग हैं।

जीवात्मा स्वभाववश अच्छे अथवा बुरे कर्म करता है। इस कारण इसके स्वभाव को उन्नत करना ही जीवात्मा की शिक्षा है।

शरीर में जीवात्मा, बुद्धि, मन और इन्द्रियों की सहायता से कार्य करता है। इस कारण शरीर के कर्म शरीर के इन तीनों अंगों के श्रेष्ठ और निकृष्ट होने से प्रभावित होते हैं। अतएव जीवात्मा के कर्मों को ठीक दिशा देने के लिए इन तीनों—इन्द्रियों, मन और बुद्धि का भी परिपक्व होना आवश्यक है। अतः इसको परिपक्व करना शिक्षा का मुख्य अंग है।

अतः शिक्षा इन्द्रियों, मन, बुद्धि और जीवात्मा से सम्बन्ध रखने वाली प्रक्रिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



एक साधारण-सा उदाहरण लिया जा सकता है। एक घड़ा बनाना है। इसके लिए मट्टी, पानी, चक्का आदि उपलब्ध करना इन्द्रियों का काम है। बुद्धिमानों ने इसके बनाने का एक सामान्य ढंग और रूप-रेखा पता कर रखी है। इस कारण आज घड़ा बनाने वाले के लिए इनको उपलब्ध कर इनसे काम लेना ही घड़ा बनाना कहाता है।

हां, कुम्हार अपने अनुभव से, अपने साधनों में उन्नति भी कर सकता है। यह तकनीकी उन्नति (Technical advancement) कही जाती है। इसको शिक्षा के अतिरिक्त प्रशिक्षण का नाम दिया गया है। शिक्षा इन्द्रियां, मन, बुद्धि और जीवात्मा को कार्य कुशल बनाने का नाम है।

इन्द्रियों को कुशल करना तकनीकी प्रशिक्षण का भी अंग है। अतः इन्द्रियों की कुशलता द्विपक्षीय है। इसका एक अंग सामान्य शिक्षा के अधीन है और इसका दूसरा अंग तकनीकी प्रशिक्षण के अधीन है। मन और बुद्धि तकनीकी प्रशिक्षण को समझने में उपकारी सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार इन्द्रियां, मन, बुद्धि और जीवात्मा के कार्यों को समझ लें, तब ही इनकी शिक्षा की प्रक्रिया समझ में आ सकती है।

**इन्द्रियां**—इन्द्रियां दस हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियां और पाँच कर्मेन्द्रियाँ। ज्ञानेन्द्रियां संसार की वस्तुओं और उनके कर्मों का ज्ञान मन को कराती हैं। अतः इन ज्ञानेन्द्रियों की कार्य करने के सामर्थ्य को स्थिर और उन्नत करते रहना चाहिए।

पाँच ज्ञानेन्द्रियां हैं—आंख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा। ये संसार की वस्तुओं और उनके कर्मों का ज्ञान दृष्टि, श्रवण शक्ति, घ्राण शक्ति, स्वाद लेने की शक्ति और स्पर्श (अनुभव) करने की शक्ति से कराती हैं।

समय-समय पर इन्द्रियों के इस सामर्थ्य की परीक्षा होती रहनी चाहिए।

बालक अथवा बालिका जब पाँच वर्ष की हो तो उनकी इन शक्तियों की परीक्षा होनी चाहिए।

(१) अतः अब एक बालक अथवा बालिका की शिक्षा का आरम्भ इससे ही समझना चाहिए। पाठशाला में प्रवेश के समय प्रत्येक बालक की शक्तियों की परीक्षा होनी चाहिए और उसका परिणाम उसके प्रवेश के फार्म पर और उसकी वृत्तान्त-पुस्तिका पर लिखा होना चाहिए।

समय-समय पर इन पांचों ज्ञानेन्द्रियों के सामर्थ्य का वृत्तान्त जान कर बच्चों की उन्नति पुस्तक (Progress book) पर लिखना चाहिये।

इन इन्द्रियों की शक्ति की उन्नति का लेखा-जोखा पाठशाला के अध्यापक को रखना चाहिये। साथ ही इन इन्द्रियों के प्रयोग और इनकी सामर्थ्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विकास का प्रबन्ध भी होना चाहिए।

यह कैसे हो सकेगा ? इसके लिये जीवनचर्या के कुछ सामान्य नियम और उपायों का वृत्तान्त निश्चित होना चाहिये। अध्यापकों को उनके अनुसार बच्चों का परीक्षण तथा अभ्यास कराते रहना चाहिये।

इसी प्रकार कर्मेन्द्रियों की कुशलता का वृत्तान्त भी प्रत्येक विद्यार्थी की शिक्षा का अंग होना चाहिए।

ज्ञानेन्द्रियों के कार्य को निरीक्षण कहा जाता है। इसे अंग्रेजी में (Power of observation) कहते हैं। इसमें इन्द्रियों के साथ मन का भी सम्बन्ध है। अतः मन की ग्रहणशीलता को भी उन्नत करने का उपाय करना चाहिए। इसकी भी परीक्षा शिक्षा के अन्य विषयों के साथ-साथ होती रहनी चाहिए।

बच्चे की निरीक्षण शक्ति पर ही उसकी बुद्धि का विकास किया जा सकता है।

पिछले दो सौ वर्ष से अंग्रेजी विधि-विधानों के प्रभाव से देश में यह प्रवृत्ति उत्पन्न हो गयी है कि धनी-मानी लोग दान-दक्षिणा करते हैं तो किसी स्वार्थ सिद्धि के लिए करते हैं। इस प्रवृत्ति को बदलने के लिए हमारा सुझाव यह है कि जो धनी-मानी लोग जिनकी आय तीस हजार से ऊपर हो, उनको कर की अधिक दर से मुक्त किया जाए। आयकर विभाग उनको इस दर में वृद्धि से राहत तब दे, जब वे अपनी इस प्रकार की बचत किसी शैक्षणिक रजिस्टर्ड संस्था को दें।

इसका अभिप्राय यह होगा कि देश में स्थान-स्थान पर प्राइवेट शैक्षणिक संस्थाएं रजिस्टर्ड हो जायेंगी और वे बालक-बालिका की पाठशालाएं इत्यादि चलाने का कार्य करने लगेंगी।

अर्थात् इन शैक्षणिक संस्थाओं को दान देने की रसीद दिखाने पर आय कर से छूट मिलनी चाहिए। अभी तक तो आयकर विभाग कुछ संस्थाओं को ही दिए धन को आयकर से मुक्त करते हैं। परन्तु हमारा अभिप्राय यह है कि लोक-सेवा के संस्थान चैरिटेबल सोसायटी विभाग के नियमोपयियमों के अनुसार स्थापित समितियां खोलें, रजिस्टर्ड करायें और आयकर विभाग तीस हजार से ऊपर आय करने वालों को इन संस्थाओं में दान देने पर छूट दे।

हिन्दू परम्परा के अनुसार सरकार अधिक से अधिक आय का छठा भाग कर में ले सकती है। यह लगभग तीस हजार वार्षिक की आय पर पांच हजार होता है। हमारा सुझाव है कि इस प्रकार रजिस्टर्ड चैरिटेबल समितियों को दिए धन पर आयकर में वृद्धि न की जाये। वर्तमान कर-पद्धति में तो कर की प्रतिशत दर बढ़ा दी जाती है। हम समझते हैं कि कर-दाता यदि बढ़ी हुई आय में से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



एक निश्चित धन राशि पंजीकृत समितियों को दान में दे दें तो उनके कर की प्रतिशत दर में वृद्धि न की जाये। उन्हें यह छूट किसी समिति को दिए गये दान की रसीद दिखाने पर मिल जानी चाहिए और यदि करदाता दान न दे तो शासन उसकी आय पर कर की दर बढ़ाकर, वह बढ़ा हुआ कर उससे प्राप्त करे और वह राशि स्थानीय विश्वविद्यालय में जमा करा दे।

चैरिटेबल समितियों का रजिस्ट्रेशन रजिस्ट्रार करे। इस प्रकार इन समितियों के पास शिक्षा पर व्यय करने के लिए एक अच्छी खासी राशि एकत्र हो जायेगी तथा सरकार के हस्तक्षेप से शिक्षा स्वतंत्र हो सकेगी।

ऐसे संस्थान देश भर के ज़िलह-ज़िलह में स्थापित हों। जहां न हो सकें, वहां के समीप के विश्वविद्यालय इन के स्थापित करवाने में सक्रिय यत्न करें। ऐसे संस्थान् स्थानीय विश्वविद्यालयों के संरक्षणों में स्थापित हों।

प्रत्येक विश्वविद्यालय का देश में एक कार्य-क्षेत्र निश्चित होना चाहिए और उस क्षेत्र में इस प्रकार की शैक्षणिक संस्थाएं चालू करने का कर्त्तव्य उनका ही होना चाहिए।

यह चैरिटेबल शैक्षणिक संस्थाएं विश्वविद्यालय के द्वारा यह घोषित करें कि कोई भी 'ट्रेण्ड-स्नातक' विश्वविद्यालय में रजिस्टर होकर किसी भी गांव अथवा मुहल्ले में पाठशाला खोल सकता है। उसे विश्वविद्यालय से प्रमाण-पत्र प्राप्त कर स्वेच्छा से गांवअथवा मुहल्ले में पाठशाला चालू कर, उसमें विद्यार्थियों को भरती करना चाहिए। विद्यार्थियों की संख्या के अनुसार वहां की कोई शैक्षणिक संस्था उसे धन की ग्रांट दे सकती है। यह धन अध्यापकों को देकर वह संस्था विश्वविद्यालय को बता दे कि वह इतना धन शिक्षक को दे रही है। इसका निरीक्षण विश्वविद्यालय की एक समिति करे।

इस प्रकार एक ट्रेण्ड स्नातक किसी एक गांव अथवा मोहल्ले में वहां के एक सौ बच्चों को लेकर पाठशाला खोल देता है। उसके साथ और दो अन्य अध्यापक कार्य कर रहे हैं। तब विश्वविद्यालय द्वारा निरीक्षण होने और स्वीकार करने पर शैक्षणिक समिति उसे दस रुपये (या अधिक) प्रति विद्यार्थी का अनुदान देना स्वीकार कर सकती है। इस प्रकार पाठशाला चलती है और निरीक्षण स्थानीय विश्वविद्यालय का होता है।

विश्वविद्यालय राजकीय नियंत्रण से सर्वथा स्वतंत्र होने चाहिएं। केवल राष्ट्र, जिसकी रूप-रेखा हम इस पुस्तक में दे रहे हैं अथवा जिसे विद्वान लोग स्वीकार करें, वह ही पाठ्यक्रम में विश्वविद्यालय की पथ-प्रदर्शक हो।

वैसे हमारी कल्पना यह है कि पांच वर्ष की आयु में बच्चे पाठशाला में प्रवेश लें और दस वर्ष की आयु तक पाठशाला में पढ़ें। पाठशालाओं में लड़के-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लड़कियों की सांझी शिक्षा हो। पाठशालाएं चालू करने का अधिकार किसी भी ट्रेण्ड ग्रेजुएट को हो और उसे आर्थिक सहायता स्थिति अनुसार शैक्षणिक चैरिटेबल सोसायटी अथवा विश्वविद्यालय दें।

पांच वर्ष की शिक्षा के उपरान्त प्रारम्भिक शिक्षा बोर्ड, जो विश्वविद्यालय नियुक्त करे, उन सब विद्यार्थियों की परीक्षा ले और उत्तीर्ण विद्यार्थियों को विद्यालयों में प्रवेश मिल सके। दस वर्ष की आयु से पन्द्रह वर्ष की आयु तक विद्यालयों में शिक्षा हो। तदनन्तर शिक्षा बोर्ड विद्यार्थियों की परीक्षा ले और उत्तीर्ण विद्यार्थियों को महाविद्यालयों में प्रवेश मिले। चार वर्ष की महाविद्यालयों की शिक्षा के उपरान्त दो वर्ष की पढ़ाई किसी एक विषय की हो और उसी काल में उस विषय में किसी विशेष विषय पर शोध भी किया जा सके।

विश्वविद्यालय प्रबन्धक समिति का गठन वहां के प्राध्यापक, विश्वविद्यालय के स्नातक और यदि वहां कोई शैक्षणिक समिति बनी हो तो उसके प्रतिनिधियों से बने और वह विश्वविद्यालय के निर्वाचित कुलपति के अधीन कार्य करे।

हमारी कल्पना यह है कि पूर्ण शिक्षा का कार्य-भार विश्वविद्यालय की सीनेटों के अधीन हो जाये। प्रारम्भिक शिक्षा बोर्ड और माध्यमिक शिक्षा बोर्ड भी विश्वविद्यालय ही नियुक्त करें। शासन का इस सब प्रबन्ध से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध न हो। शासन अपने विभिन्न कार्यालयों में कर्मचारी अपने-अपने महकमे की परीक्षा से नियुक्त करे।

इन सरकारी परीक्षाओं में बैठने की शर्त विश्वविद्यालय की कोई परीक्षा न हो। कोई भी युवक अथवा युवती हाथ से लिख कर अर्जी कर सके, परन्तु उसकी नियुक्ति विभाग की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर ही हो।

शिक्षा तो शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही दी जाये, किसी संस्थान में सेवा कार्य प्राप्त करने के लिये नहीं।

हां, सरकार अपने विभिन्न विभागों में कार्य की शिक्षा, निर्वाचित प्रत्याशियों को दे सकती है। यह शिक्षा सरकारी विभाग के कार्य-सम्बन्धी ही होगी।

इस प्रकार राष्ट्र की शिक्षा राज्य से मुक्त की जा सकती है। तकनीकी और सरकारी कार्य की शिक्षा विश्वविद्यालय से पृथक् है। यह तो स्वाभाविक ही है कि विश्वविद्यालय की कोई भी परीक्षा उत्तीर्ण करने पर विद्यार्थी की प्रतिष्ठा बढ़ेगी, परन्तु किसी भी कार्य की सेवा प्राप्त करने के लिये विश्वविद्यालय की किसी परीक्षा के उत्तीर्ण किये जाने की शर्त नहीं होनी चाहिये।

प्रत्येक विद्यालय, महाविद्यालय के लिये जनता की किसी सोसायटी का संरक्षण होना चाहिये और विद्यालय-महाविद्यालय के प्रबन्ध का श्रेय जन-समिति को होना चाहिये। इस पर भी शिक्षा विश्वविद्यालय की देख-रेख में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



होनी चाहिये।

विद्यालय की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर कोई विद्यार्थी किस विश्वविद्यालय में भरती हो सकता है, यह विश्वविद्यालय और विद्यार्थी पर छोड़ दिया जाये।

जब सरकार, विश्वविद्यालय और स्थानीय शैक्षणिक समिति में किसी विषय पर विवाद हो तो न्यायालयों का द्वार उनके लिये खुला हो। हमारा यह मत है कि शिक्षा की किसी प्रकार की फीस नहीं होनी चाहिये। शिक्षा का व्यय-भार सरकार विश्वविद्यालय और शिक्षण समितियों पर ही होना चाहिये।

# तृतीय अध्याय

## राष्ट्र और अर्थ-व्यवस्था

राज्य को केवल उन उद्योगों को चलाना चाहिये जिनका सीधा सम्बन्ध देश के प्रबन्ध और सुरक्षा के साथ हो। इन उद्योगों के लिये सरकार को कल-कारखाने लगाने चाहियें। परन्तु देशवासियों के प्रयोग की वस्तुओं के निर्माण के लिये लोग स्वतंत्र रूप से कारखाने चलायें। ये वस्तुएं भी छोटी-छोटी मशीनों पर निर्माण की जायें। मशीनें ऐसी हों जो एक व्यक्ति अकेला चला सके और फिर अधिक से अधिक एक इकाई में पांच व्यक्ति कार्य कर सकें।

छोटी-छोटी मशीनें, छोटे-छोटे कारखाने, प्रायः काम करने वालों के घरों में अथवा नगर में किसी व्यक्ति के मकान में चालू किये जा सकते हैं।

कच्चे माल का वितरण चाहे तो राज्य कर सकता है अथवा यह भी उद्योग-शील मनुष्यों पर छोड़ दिया जाये। सरकार लोगों को कच्चा माल पृथिवी में से प्राप्त करने का लाइसेंस दे। सरकार उनसे उत्पादन-कर ले सकती है और व्यक्ति कच्चा माल निकाल कर कारखाने तक पहुँचायें।

कच्चे माल से यथासम्भव छोटी-छोटी मशीनों पर ही वस्तुएं तैयार की जायें और प्रयोग करने वाली जनता तक पहुँचाने का काम निजी व्यापारी करें।

परस्पर स्पर्धा के लिये विस्तृत क्षेत्र हो। हमारा मत है कि इससे वस्तुओं की श्रेष्ठता में उन्नति होगी और मूल्यों में कमी आयेगी।

यदि विदेशी लोग निजी रूप से व्यापार करें तो अपने देश के भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



व्यापारियों को उनसे व्यापार करना चाहिये और जिन देशों के व्यापार वहाँ की सरकारें करती हैं, वहाँ अपने देश की भी सरकार को उनके साथ व्यापार करना चाहिये। विदेश के निजी व्यापारियों के साथ भारत के भी निजी व्यापारियों का सम्पर्क हो और विदेशी सरकारों से सरकार का लेने-देने हो।

आज के अर्थशास्त्री इस व्यवस्था को अन्धेरगर्दी कहेंगे। यह उनका विचार वर्तमान अन्धेरगर्दी को ठीक समझने के कारण है। जो दूषित को श्रेष्ठ मानता है, वह श्रेष्ठ को दूषित मानेगा ही। हमारा विचार है कि इस स्वतंत्र अर्थ-व्यवस्था से राष्ट्र का और व्यक्ति का, दोनों का कल्याण होगा।

यह सम्भव है कि इस स्वतंत्रता के मिलने पर आरम्भ में बिगड़े स्वभाव वाले व्यापारी इसका दुरुपयोग करें। परन्तु हमारा मत है कि खुले मुकाबिले (free competition) का स्वभाव पड़ते ही देश में उन्नति होने लगेगी। राज्य का हस्तक्षेप वहाँ ही हो सकता है, जहाँ कोई उद्योगपति धोखा-धड़ी से अथवा अपने अर्थ बल से दूसरों को क्षेत्र से बाहर करने का यत्न करे। राष्ट्र की धर्म सभा (Legislative body) कुछ नियम-उपनियम बनाये जिससे देश की अर्थ व्यवस्था में शान्ति रहे।

अर्थ की शिक्षा विश्वविद्यालयों का क्षेत्र है और उसका उद्देश्य उस देश के राष्ट्र को धन-धान्य से सम्पन्न करना है। यह व्यक्तिगत उद्योगपतियों और व्यापारियों का कार्य है।

इस स्वतंत्र अर्थ-व्यवस्था में कठिनाई निजी उद्योगपतियों के लिये पूंजी की होगी। वर्तमान सरकार ने पूंजी को अपने अधीन करने के लिये अनेक विधि-विधान बनाए हुए हैं। इस पर भी सरकारी अधिकार से एवं सरकारी कोष से कुछ भी व्यय करना उचित नहीं है।

इसके लिये देश की बैंकिग कम्पनियां ही उचित संस्थान हैं। कारखानेदारों तथा व्यापारियों में यह प्रवृत्ति उत्पन्न करनी चाहिये कि वे अपना फालतू धन बैंकिग कम्पनियों में अथवा बैंकों में रखें और बैंक उस धन को उद्योग-धन्धों के लिये पूंजी के लिये प्रस्तुत करें। जब देश में यह प्रवृत्ति व्यापक हो जायेगी कि उद्योग-धन्धे छोटे-छोटे हों तो बैंक उनके लिये सरलता से पूंजी प्रस्तुत करेंगे।

आज भी पूंजी की उपलब्धि बीमा कम्पनियों और बैंकों से होती है। सरकार ने इन दोनों निगमों पर अधिकार जमा रखा है। इसमें सरकार के दो उद्देश्य प्रतीत होते हैं। एक तो यह कि सरकार उद्योगों के लिये पूंजी चाहती है और दूसरे सरकार पूंजी का केन्द्रीयकरण करना चाहती है।

हम समझते हैं कि ये दोनों उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सके हैं। बीमा कम्पनियों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपार धन प्राप्त करके भी और बैंकों पर नियंत्रण प्राप्त करके भी सरकार को नये ऋण के स्रोत खोलने पड़ रहे हैं।

पूंजी पर अधिकार प्राप्त करने के लिये सरकार ने एक अन्य उपाय प्रयोग किया है। यह है राज्यों में जुए-बाजी। इनका नाम 'लाटरी' रखा गया है। इससे सरकार को कितनी पूंजी की प्राप्ति हुई है, कहा नहीं जा सकता। साधारण समाचार-पत्रों में इसकी रिपोर्ट नहीं छपती। एक बात सिद्ध है कि जनता की प्रवृत्ति जुआ खेलने की ओर अधिकाधिक होती जाती है। यह मानसिक और बौद्धिक पतन का लक्षण है।

हमारा मत है कि पूंजी के विषय में सरकार का लक्ष्य यह होना चाहिये कि छोटे-छोटे उद्योग और छोटे-छोटे व्यापारों को प्रोत्साहन दे और फिर पूंजी का नियंत्रण वैंक अपने हित में कर लेंगे।

स्वतंत्र अर्थ-व्यवस्था के लिये स्वतंत्र पूंजी एक अत्यावश्यक अंग है।

इस सब स्वतंत्रता के लिये श्रेष्ठ और सबल न्यायपालिका की आवश्यकता है। इसका वर्णन हम न्याय-व्यवस्था के अध्याय में करेंगे।

संक्षेप में, हमारा अभिप्राय यह है कि कोई भी व्यक्ति कोई भी व्यापार अथवा उद्योग चालू कर सकता है। राष्ट्र के धनी-मानी संस्थान् उसकी योजना से प्रभावित हो, उसे पूंजी दे सकते हैं। प्रत्येक व्यापारी अथवा उद्योगपति देश की धर्म-व्यवस्था के अनुसार कार्य करे। धर्मव्यवस्था का अभिप्राय है—कानून अथवा नियमोपनियम जो राष्ट्र की धर्म-सभा (legislative-body) बनाये।

आज धर्म-सभा संसद तथा राज्य विधान सभाएं हैं। यह उचित नहीं है। क्योंकि इन लोक सभा और राज्य विधानसभाओं का निर्वाचन करने वालों के लिये और इनमें निर्वाचन हुओं के लिये योग्यता का कोई अधार निश्चित नहीं है। अतः, हम समझते हैं कि यह अनाधिकारियों को अधिकार देने के तुल्य है।

धर्म-सभा के विषय में आगे चल कर कहेंगे। यहां इतना समझ लेना पर्याप्त है कि धर्म सभा वस्तुतः धर्म का अर्थ समझने वालों की एक सभा होनी चाहिये जो राष्ट्र की प्रत्येक प्रकार की गतिविधि के लिये नियम-उपनियम बना सके व्यापारियों और उद्योगपतियों को उन नियमों का पालन करना होगा।

रुपये का मूल्य देश के भीतर और विदेश में भिन्न-भिन्न हो सकता है। विदेश के साथ रुपये के मूल्य का निर्णय देश के व्यापार की मात्रा पर निर्भर करता है। व्यापार स्वतंत्र देशों के साथ व्यापारी करेंगे। इसके उनके व्यापार की मात्रा पर रुपय का मूल्य निर्भर करेगा। यदि देश के उद्योगपति और व्यापारी अन्य देशों की तुलना में बढ़िया माल बनायेंगे तो स्वाभाविक रूप में देश के रुपये का मूल्य बढ़ेगा। इसके लिये व्यापारियों और उद्योगपतियों को ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यत्न करना होगा। यदि वे बढ़िया वस्तुएं नहीं बना सकेंगे तो देश के रुपये का मूल्य कम होगा।

जिन देशों में सरकारें व्यापार करती हैं, वहां भी देश के उद्योगपतियों के बढ़िया माल के निर्माण का प्रभाव होगा।

सरकारी उद्योग केवल देश की रक्षा और प्रबन्ध सम्बन्धी वस्तुओं के निर्माण के लिये हो। इसमें भी सरकार चाहे तो कुछ वस्तुएँ, जिनका निर्माण किसी प्रकार का रहस्य नहीं रहा, निजी उद्योगपतियों से बनवा सकती है। इस पर भी शस्त्रास्त्रों को अन्तिम रूप तो सरकारी कारखानों [औडिनैंस फैक्टरियों] में मिलना चाहिये। इनके लिये अन्वेषण विभाग और निर्माण विभाग जनता से ओझल होने ही चाहियें।

आज की सभ्यता के स्तर पर कुछ आवश्यक पदार्थ हैं। उनके उत्पादन में सरकार यथा सम्भव सहायता और सहयोग दे सकती है।

उदाहरण के रूप मे कागज, कपड़ा, मकान बनाने की सामग्री (ईंटें, चूना, लकड़ी इत्यादि), छापेखाने, कपड़ा बुनने तथा सीने की मशीनें, जूते इत्यादि समान के निर्माण में सरकार सहयोग दे सकती है। परन्तु सहयोग का अर्थ स्वामित्व नहीं होता।

# चतुर्थ अध्याय

## धर्म-व्यवस्था एवं न्याय-व्यवस्था

जहां राष्ट्र का सम्बन्ध शिक्षा और अर्थ-व्यवस्था से है, वहां उनसे भी अधिक सम्बन्ध धर्म-व्यवस्था से है। अतः जहां राष्ट्र राज्यसभा बनाता है, वहां धर्म-व्यवस्था और न्याय-व्यवस्था की सभाओं का निर्माण भी राष्ट्र करे।

राज्य सभा के विषय में हम पृथक् में लिखना चाहते है। यहां हम धर्म सभा और न्याय सभा के विषय में कह रहे हैं। राष्ट्र में सभी घटक समान अधिकार रखते हैं। यही प्रजातंत्र का विधान है। परन्तु अधिकार योग्यता पर आधारित होना चाहिये। समान योग्यता होने पर उन समान योग्यता वालों में मज़हब, जाति, लिंग, जन्म, स्थान इत्यादि के कारण भेद नहीं होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


चाहिये । यही समानता का अर्थ है । समानता का यह अर्थ नहीं कि चक्षु-विहीन और चक्षु रखने वालों को समान अधिकार दे दिया जाये । अथवा एक व्यक्ति जो पांचवी श्रेणी की परीक्षा भी पास नहीं कर सका उसको न्यायाधीश चुनने का अधिकार दे दिया जाये । प्रजातंत्र का यह अर्थ नहीं होता ।

आज प्रतातंत्र का अर्थ यही समझा जाता है कि प्रधानमंत्री से लेकर एक सामान्य गांव की पंचायत के सरपंच तक को चुनने का अधिकार सब नागरिकों को समान रूप में प्राप्त है। हम इसे मूर्खता मानते हैं। यह मूर्खों को विद्वानों के समान करने का आयोजन है । प्रजातंत्र का अर्थ यह है कि समान गुण, कर्म, स्वभाव रखने वालों को समान अधिकार दिये जायें।

सामान्य अवस्था में शासन-व्यवस्था का प्रबन्ध करने वालों को चुनने का अधिकार तो सबको मिल सकता है, परन्तु प्रबन्ध का सम्बन्ध धर्म-व्यवस्था में सुधार-बिगाड़ करने से नहीं है । धर्म व्यवस्था (Iaw-order) में सुधार (reform) तो इस विद्या के जानने वाले ही कर सकते हैं। वे ही धर्म व्यवस्था में त्रुटियों को समझ सकते हैं और उसमें परिवर्तनों का सुझाव दे सकते हैं ।

अतएव कानून बनाने वाली सभा के सदस्य बनने का और बनाने का अधिकार सर्व साधारण को देना उचित नहीं है। इस कारण राष्ट्र की धर्म व्यवस्था का निर्माण करने वाले धर्म को जानने वाले ही हो सकते हैं। धर्म व्यवस्था के कार्य को लेजिस्लेटिव-वर्क कहते हैं । अतः यह काम सामान्य शान्ति व्यवस्था रखने वालों का नहीं है। शान्ति व्यवस्था (law and order) रखना राज्य का कार्य है। उसके विषय में हम पृथक् में लिख चुके हैं। कुछ आगे चलकर लिखेंगे। जहां तक धर्मव्यवस्था (legislative work) का कार्य है, वह शासक के निर्वाचनों से पृथक् है । इसको चुने जाने वाले कानून पढ़े हुए व्यक्ति ही हो सकते हैं । अतः कानूनी कौंसिल के प्रत्याशी के लिये कुछ योग्यता की शर्त होनी चाहिये। हमारे विचार में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होना चाहिए जो कानून की उच्चतम शिक्षा प्राप्त किए न हो और फिर कम से कम दस वर्ष तक कानून का काम न कर चुका हो।

कानून की कितनी पढ़ाई पर कानून की डिग्री मिले, यह विचार करना विश्वविद्यालयों का काम है। यहां हमारा प्रयोजन उन लोगों से है जो विश्व-विद्यालय द्वारा निश्चित कानून की उच्चतम परीक्षा उत्तीर्ण किये हों और फिर कानून का काम दस वर्ष तक करते रहे हों। दूसरी बात यह है कि इनको चुनने के लिए मतदाता भी शिक्षित लोग ही होने चाहियें। विश्वविद्यालयों में स्नातक पद प्राप्त लोग सभा के प्रत्याशी को मत देकर उसे इस सभा का सदस्य चुन सकते हैं। अतः इनके मतदान केन्द्र भी विश्वविद्यालय अथवा विश्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


विद्यालयों द्वारा नियुक्त किये जाने चाहियें। स्नातक मतदाता हों और प्रत्याशी कानून की शिक्षा प्राप्त तथा कानूनी कार्य का दस वर्ष का अनुभव रखने वाले हों। यह सभा उसी मान-प्रतिष्ठा की पात्र होनी चाहिए जिसकी लोकसभा हो। इस सभा द्वारा स्वीकार किए कानूनों के अनुसार लोकसभा राज्य चलाए।

इसी प्रकार एक न्याय समिति का गठन होना चाहिए। उसमें प्रत्याशी तो वे लोग हों जो कहीं न्यायपालिका में बीस वर्ष तक कार्य कर चुके हों। प्रायः रिटायर्ड जज, मैजिस्ट्रेट इत्यादि इस श्रेणी में आते हैं। और इनके भी निर्वाचन करने वाले मतदाता स्नातक ही हों। इनके भी मतदान केन्द्र विश्वविद्यालय अथवा विश्वविद्यालयों द्वारा नियत हों।

यह न्याय सभा भिन्न-भिन्न न्यायपालिकाओं के न्यायधीशों की नियुक्त करे। तहसीलदार से लेकर सुप्रीमकोर्ट के मुख्य न्यायधीश तक की नियुक्ति इस समिति के द्वारा हो।

इस समिति का शासन-सभा से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए और न ही इस समिति का सम्बन्ध धर्म सभा से हो।

इस प्रकार राष्ट्र के कार्य होंगे—शिक्षा, अर्थव्यवस्था, राज्य-प्रपंच, धर्म-व्यवस्था तथा न्याय-व्वस्था।

शिक्षा का प्रबन्ध विश्वविद्यालय की सीनेट करे। इनका निर्माण करेंगे विश्वविद्यालय के प्राध्यापक, स्नातक तथा शिक्षा संबन्धी जनता की समितियां।

अर्थव्यवस्था का प्रबन्ध करें उद्योग तथा व्यापार के भिन्न-भिन्न स्तरों के केन्द्र और इनके साथ ही बैंकिंग कम्पनियां इत्यादि। इस पर भी अर्थ-व्यवस्था धर्मसभा द्वारा बनाए नियमोनियमों के अनुसार चले।

शासन सभा का संगठन हो देश के वयस्क मतदाताओं से। हम समझते हैं कि इस विषय में वयस्क होने की आयु पचीस वर्ष हो। इस पर भी इस विषय में निश्चय धर्म सभा करे। वह समय-समय पर राज्यसभा के मतदाताओं के वयस्क होने की आयु को बदल भी सकती है। धर्मसभा और न्याय समिति के नियमों के विषय में हम इसी अध्याय में लिख चुके हैं।

इन सब समितियों के कार्यों का समन्वय करने वाला देश में एक ही अधिकारी हो जिसे राष्ट्रपति भी कह सकते हैं। वर्तमान संविधान के अनुसार राष्ट्रपति मिट्टी का माधव न रहकर, राज्य की इन सब समितियों के कार्यों का समन्वय करने वाला होना चाहिए। सब समितियों के निर्णय राष्ट्रपति द्वारा घोषित हों। जहां राष्ट्र के भिन्न-भिन्न अंगों में मत-भेद हो, उस मत-भेद को परस्पर विचार-विनियम द्वारा सुलझाने का उसका अधिकार हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यदि कभी ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाए कि दो अथवा अधिक समितियां परस्पर अपना मतभेद् विलीन न कर सकें और राष्ट्रपति का हस्तक्षेप भी मतभेद दूर न कर सके तो सम्बन्धित समितियों का निर्वाचन समय से पूर्व पुनः करने की आज्ञा राष्ट्रपति कर सकता है।

हिन्दू विचार से प्रजातंत्र का अर्थ यही है कि समान गुण और समान कर्म तथा समान स्वभाव वालों में मज़हब, लिंग, जाति-पांति और जन्म स्थान इत्यादि के भेद को मान्यता न दी जाए। गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण-व्यवस्था का यही अर्थ है। इसे हम हिन्दू परम्परा इस कारण कहते हैं क्योंकि यही बात वेद में तथा भगवद्गीता में स्पष्ट शब्दों में कही है। यह हिन्दू परम्परा पिछली कुछ शताब्दियों से विलुप्त-सी हो गयी थी और हम समझते हैं कि इसका ही परिणाम हुआ था कि जाति एक सहस्र वर्ष से अधिक काल तक दासता की ठोकरें खाती रही थी।

वर्तमान प्रजातंत्र तो सर्वथा ही अयुक्तिसंगत है। यहां देश की पूर्ण वयस्क जनता के मतदान से संसद बन जाती है और उस संसद के अधिकार बहुत विस्तृत हैं। संविधान जो सन् १९५१ में स्वीकार किया गया था, उसमें भी इस संसद को अधिकार बहुत विस्तृत थे और पीछे सन् १९७६ में तो इस संसद को सर्व अधिकार सम्पन्न कर दिया था।

संविधान में एक धारा ३६८ है। उसके अनुसार संसद को संविधान के कुछ विभागों में संशोधन का अधिकार था, परन्तु सन् १९७६ में इसमें एक उप-धारा और मिला दी गयी है जिसके द्वारा किसी भी प्रकार के संशोधन का अधिकार संसद को दे दिया गया है और फिर उस पर न्यायालय को हस्तक्षेप करने से वंचित कर दिया गया है। हमारे विचार से यह तानाशाही को भी मात देने वाली उपधारा है। लोकसभा जो देश की दो-तिहाई निरक्षर जनता द्वारा निर्वाचित है, वह इसके द्वारा देश को बेच देने का भी अधिकार पा गयी है।

हम समझते हैं कि पूर्ण राष्ट्र में सर्वाधिक मान्यता धर्म के ज्ञाताओं की होनी चाहिये। उनको अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार राष्ट्र के भिन्न-भिन्न अंगों का प्रबन्ध करने दिया जाये। पढ़े-लिखे विद्वान और शिक्षा में रुचि रखने वाले लोग शिक्षा के केन्द्रों (विश्वविद्यालयों) का प्रबन्ध करें। ये विश्वविद्यालय शिक्षा का स्रोत हों। यदि ये पढ़े-लिखे लोग चाहें तो पूर्ण देश की एक शिक्षा समिति भी बना सकते हैं। वह समिति विश्वविद्यालयों के द्वारा निर्माण की जा सकती है। यह शिक्षा समिति देश के शिक्षा स्तर को ऊंचा करने के उपायों पर विचार कर सकती है।

इसी प्रकार अर्थ-व्यवस्था के विषय में वे लोग जो अर्थ-व्यवस्था में सक्रिय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सहयोग दे रहे हैं, एक सभा बना, धर्म सभा के नियमों के अनुसार देश की अर्थ-व्यवस्था को चलायें। धर्म सभा और न्यायसभा के विषय में हम ऊपर बता चुके हैं।

——

# पंचम अध्याय

**शासन—**

पूर्व इसके कि शासक सभा के निर्माण के ढंग पर चर्चा की जाये, शासन के अधिकार पर विचार होना चाहिये। सभा का सम्बन्ध उन सब कर्मचारियों से है जो देश में प्रबन्ध का कार्य करते हैं। वे कर्मचारी जनता द्वारा निर्वाचित भी हो सकते हैं और शासन द्वारा नियुक्त भी हो सकते हैं।

जनता द्वारा निर्वाचित होने का यह अर्थ नहीं कि उनके अधिकार असीम हो गये। उदाहरण के रूप में एक गाँव की पंचायत के पंच जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं। परन्तु उनके अधिकार सीमित होते हैं। ये गाँव की सीमा के भीतर रहने वालों की सुरक्षा, स्वास्थ्य और सामान्य सुख-सुविधाओं का प्रबन्ध ही करते हैं। इन पंचायतों का अधिकार सम्पत्ति के विषय में अथवा लड़ाई-झगड़े के विषय में न्यायालय के अधिकारों के समकक्ष नहीं है।

गाँव के पटवारी और कानूनगो पंचायत के सहायक हो सकते हैं। वे गाँव के आंकड़ों के विषय में पंचायत की सहायता कर सकते हैं। परन्तु तहसीलदार तो न्यायिक निर्णय देने वाला व्यक्ति होता है। वह न्याय समिति द्वारा नियुक्त न्यायपालिका के अधीन ही होना चाहिये।

इसी प्रकार हम समझते हैं कि नगरों और कसबों में डिप्टी कमिश्नर, कमिश्नर राज्य के अधीन होने चाहियें। डिप्टी कमिश्नर, जिला इत्यादि का प्रबन्ध करता है। परन्तु जब दो नागरिकों में अथवा राज्य तथा किसी नागरिक में विवाद हो तो डिप्टी कमिश्नर नहीं, प्रत्युत मैजिस्ट्रेट और सेशन जज इत्यादि न्याय का कार्य करते हैं और वे राज्याधीन नहीं होते। वे उच्च न्यायपालिका के अधीन होते हैं। राज्य का सम्बन्ध देश में शान्ति व्यवस्था के साथ है। इसमें लोकसभा के सदस्य अपने व्यक्तिगत प्रभाव से व्यक्ति के रूप में और राज्य द्वारा अपने सामूहिक विचार-विनिमय से सहायक हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शासन सभा केन्द्र में अथवा राज्यों में प्रबन्ध के साथ ही सम्बन्ध रखती है। परन्तु प्रबन्ध में शिक्षा, अर्थव्यवस्था और न्यायव्यवस्था नहीं आती। शासन का सम्बन्ध केवल शान्ति व्यवस्था के साथ ही है। शासन सभा के अधीन चीफ कमिश्नर, डिप्टी कमिश्नर, कानूनगो इत्यादि कर्मचारी कार्य करते हैं।

जब नागरिकों का परस्पर अथवा किसी नागरिक का शासन के साथ विवाद हो तो मामला न्यायपालिका के विचार का हो जाता है। न्यायपालिका में डिप्टी कमिश्नर अथवा कोई भी शासन का अधिकारी एक पक्ष हो जाता है।

जब दो नागरिकों में विवाद हो, तब भी बात वही हो जाती है जैसी एक नागरिक और शासन के भीतर होती है। विवाद के समय शासन का पद न्यायपालिका की दृष्टि में वही हो जाता है जो एक नागरिक का है।

यदि न्यायपालिका के किसी व्यवहार पर शासन को आपत्ति हो तो वह राष्ट्रपति के पास आरोप-पत्र भेज सकता है। राष्ट्रपति समन्वय करायेगा। यदि दो समितियों में मतभेद इतना प्रबल हो कि राष्ट्रपति का प्रयत्न भी सुलझा नहीं सकता तो दोनों समितियों के निर्वाचन नये होने चाहियें और मतदाताओं के समक्ष मतभेद स्पष्ट करने का कार्य राट्रपति का होना चाहिये।

राष्ट्रपति के विरुद्ध यदि तीन समितियाँ एकमत होकर आरोप लगायें तो राष्ट्रपति के विरुद्ध महा-अभियोग चलाया जा सकता है। महा-अभियोग के लिये नियमोपनियम धर्मसभा बनाये। अभियोग के समय नहीं, स्थाई रूप में, जैसे अन्य नियम बने रहते हैं।

न्यायपालिका की सहायता शासन को करनी चाहिये, जिससे वे स्वतंत्रता और निष्पक्षता से न्याय का वितरण कर सकें। यदि कभी शासन न्यायपालिका को सहायता न दे तो राष्ट्रपति सेना द्वारा न्यायपालिका की रक्षा के लिये सहायता कर सकता है।

कठिनाई तब उपस्थित हो सकती है जब तीनों समितियां राष्ट्रपति पर महा-अभियोग चलायें। उस परिस्थिति के नियम पहले से बने होने चाहियें और तीनों समितियों के प्रतिनिधि महा-अभियोग में न्यायधीश हों।

शासन का सम्बन्ध देश की सुरक्षा से भी है। परन्तु सेना राज्याधीन नहीं होनी चाहिये। यह राष्ट्रपति के अधीन हो। सेना के अधिकारियों की नियुक्ति सेना के विभाग द्वारा राष्ट्रपति की अनुमति से हो। इसमें शासन का हस्तक्षेप नहीं हो। हां, विदेशों से सम्बन्ध राज्य का कार्य है। इस कारण विदेशों से युद्ध के विषय में राष्ट्रपति की सहमति विशेष रूप से प्राप्त होनी चाहिये।

इस प्रकार राष्ट्रपति का अधिकार राज्य के ऊपर हो। राज्य और नागरिकों के विवाद न्यायपालिकों के अधीन हों। विदेशों से राज्य के विवाद राष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पति के अधीन हों। विदेशों से विवाद राष्ट्र का होता है और राष्ट्र का प्रतिनिधि राष्ट्रपति हो। ऐसे विवाद में राष्ट्रपति राज्यसभा, धर्म सभा, न्याय समिति और अर्थ समिति सबसे राय लेने का अधिकार रखे। इनका समूह ही राष्ट्र कहाता है।

जब भी किसी विदेश से किसी प्रकार का विवाद हो तो राष्ट्र का सामूहिक मत उस विवाद में राष्ट्रपति को विदित होना चाहिए। राष्ट्रपति उस मत के आधार पर ही विदेशों से बातचीत कर सकता है।

सामान्य दशा में विदेश के जिस विभाग का प्रश्न हो, देश के उसी विभाग की राय से राष्ट्रपति का व्यवहार बनना चाहिये।

इसका अभिप्राय यह है कि देश का विदेश विभाग राष्ट्रपति के आधीन होना चाहिए, यद्यपि राष्ट्रपति राष्ट्र की सम्बन्धित समिति की राय से ही कार्य करे।

---

# षष्ठ अध्याय

## राज्य की विभिन्न सभाओं के निर्वाचन—

निर्वाचन में प्रत्याशी और मतदाता मुख्य हैं। मतदाता का केवल वयस्क होना ही पर्याप्त नहीं। एक व्यक्ति इक्कीस वर्ष की वयस् का होता हुआ भी निरक्षर भट्टाचार्य हो सकता है अथवा नैतिक अपराधों में दण्ड पाया व्यक्ति हो सकता है। इस कारण केवल वयस्क होने की शर्त मतदाता बनने के लिए पर्याप्त नहीं है।

एक मतदाता स्वस्थ मन [sane mind] होना आवश्यक है। दूसरे, उसका किसी नैतिक अपराध में दण्डित न होना आवश्यक हो। तीसरे, उसका राष्ट्र का एक सक्रिय अंग होना आवश्यक है। ये कम से कम शर्तें हैं जो राष्ट्र की राज्यसभा में प्रतिनिधि चुनने के लिए मत देने वाले के लिए होनी चाहियें।

यह ठीक है कि सही दिमाग होना इत्यादि शर्तें ऐसी हैं कि इनके लिए किसी प्रकार के डॉक्टरी सर्टिफिकेट की आवश्यकता नहीं। सामान्य रूप में यह स्वीकार करना होता है कि एक वयस्क नागरिक सही दिमाग ही है। अर्थात वह पागल नहीं है और वह किसी प्रकार के अपराध में दंडित नहीं। जब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कोई प्रमाण इन दोषों का प्रत्यक्ष न हो, तब तक इनका न होना ही मानना होगा।

परन्तु राष्ट्र की किसी समिति के प्रत्याशी के लिए तो इन बातों का प्रमाण होना चाहिए। वर्तमान लोकसभा के प्रत्याशी के लिए भी इसे आवश्यक माना गया है। प्रत्येक प्रत्याशी को एक स्वीकारोक्ति [affidavit] देना पड़ता है कि वह एक स्वस्थ, निर्दोष, पच्चीस वर्ष का नागरिक है।

शासन सभा के प्रत्याशी के लिए भी इतना पर्याप्त है। परन्तु निर्वाचित घोषित होने के लिए पचास प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त करने आवश्यक होने चाहियें।

यह तब ही हो सकता है जब प्रत्येक ऐसे निर्वाचन क्षेत्र में, जहां से दो से अधिक प्रत्याशी हों, दो बार निर्वाचन हों। किसी निर्वाचन क्षेत्र में यह भी संभव है कि वहां दस प्रत्यासी हों और सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले को एक तिहाई से भी कम मत पड़े हों और उसके विपरीत मत बँटे हुए होने के कारण अप्रभावी हों, परन्तु हों उससे अधिक जो अधिकतम प्राप्त कर सका हो।

मान लीजिए, एक निर्वाचन क्षेत्र में एक लाख मतदाताओं ने मतदान किया है। एक प्रत्याशी को पन्द्रह हजार मत मिले हैं और शेष पचासी हजार मत उसके विपरीत हैं, यद्यपि वे शेष नौ प्रत्याशियों में बँटे हुए हैं। ऐसी अवस्था में पन्द्रह हजार मत प्राप्त करने वाला प्रत्याशी उस निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता।

ऐसी स्थिति कृत्रिम रूप से भी उत्पन्न की जा सकती है। किसी निर्वाचन क्षेत्र में कोई धनी व्यक्ति एक प्रत्याशी है। उसका मुकाबिला कोई सीमित सामर्थ्य वाला परन्तु योग्य व्यक्ति कर रहा है। वह धनी प्रत्याशी विद्वान प्रत्याशी का विरोध करने के लिए, अपने सहायक नौ अन्य व्यक्तियों को प्रत्याशी बना देता है।

एक लाख मत पत्रक डाले जाते हैं। वह धनी स्वयं तो बीस सहस्र मत प्राप्त करता है। वह विद्वान उसके मुकाबले में पन्दह हजार मत प्राप्त करता है और शेष पैंसठ हजार मत धनी के द्वारा खड़े हुए आठ व्यक्ति सात-सात, आठ-आठ हजार पा जाते हैं। इस प्रकार उस धनी का बीस हजार मत प्राप्त कर विजयी होना एक प्रकार से वहां की जनता से छलना होगी।

अतः, हमारा मत यह है कि ऐसी स्थिति में जहां दो से अधिक प्रत्याशी निर्वाचन के लिए आगे आयें, वहां जब तक विजयी प्रत्याशी पचास प्रतिशत से ऊपर मत प्राप्त न करे, तब तक वह विजयी घोषित न किया जाये। इसके लिए एक सामान्य विधि यह है कि प्रथम चुनाव में जिन दो ने सबसे अधिक मत प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



किये हैं, उनमें दुबारा चुनाव कराया जाये।

यदि दूसरे चुनाव में मतदान इतना कम हो कि वह पूर्ण मतों की संख्या के एक तिहाई से भी कम हो तो उस क्षेत्र का स्थान रिक्त समझा जाये। वहां का कोई भी प्रतिनिधि राज्य सभा में न माना जाये और यह समझा जाये कि वहां के लोग अपना प्रतिनिधि भेजने में रुचि नहीं रखते। शेष निर्वाचन क्षेत्रों के प्रतिनिधि देश का राज्य-कार्य चलायें। यदि पहले ही मतदान में विजयी प्रत्याशी को सम्पूर्ण मत-दान के पचास प्रतिशत से अधिक मत पड़ जायें तो दूसरी बार निर्वाचन कराने की आवश्यकता नहीं।

यह प्रक्रिया, हमारे विचार में सब निर्वाचनों में होनी चाहिये। विशेष रूप में राष्ट्रपति के चुनाव में तो अवश्य होनी चाहिये। वैसे दो पार्टी की प्रथा जैसी अमेरिका में है, उचित नहीं है। हम समझते हैं कि कोई भी व्यक्ति जो एक निर्धारित संख्या में मतदाताओं से अपना नाम प्रस्तावित करा सकता हो, प्रत्याशी बन सकता है।

राजनीतिक दल नहीं बनने चाहियें। प्रत्याशी व्यक्तिगत रूप में अपने-अपने विचारों का प्रचार कर अपना निर्वाचन लड़ें। समितियों के चुनावों में निर्वाचित होने के उपरान्त ये सदस्य सांझा मोर्चा बनाने के लिये दल बना सकते हैं। मतदान के पूर्व दलबंदी दोषयुक्त है।

राष्ट्रपति के निर्वाचन में प्रत्याशी बनने के लिये कुछ ज़मानत लेना उचित ही है। ज़मानत ज़ब्त तब होनी चाहिये जब प्रत्याशी एक नियत से कम संख्या में मत प्राप्त करे।

वर्तमान संविधान में राष्ट्रपति केवल हस्ताक्षर करने की मुहर मात्र ही है। उसके कुछ भी अधिकार नहीं हैं। संविधान में कहा है कि उसे प्रधानमंत्री के कहने के अनुसार व्यवहार रखना चाहिये।

हम समझते हैं कि राष्ट्रपति का पद एक अति उत्तरदायित्वपूर्ण पद है। वह राष्ट्र की विभिन्न समितियों का केवल प्रवक्ता ही नहीं, वरन् उनमें मतभेद होने पर विवाद का समाधान करने वाला भी है। मतभेद न मिटने पर समितियों को विघटित कर नये निर्वाचन कराने का अधिकार भी उसे है।

वह विदेश विभाग का प्रवक्ता है और सेना का सर्वोच्च अधिकारी है। इस पर भी राष्ट्रपति न्यायपालिका से ऊपर नहीं है। न्याय समिति तो विघटित हो सकती है, परन्तु न्यायपालिका राष्ट्रपति की आज्ञा से विघटित नहीं हो सकती।

इस सब प्रपंच में एक छिद्र भी है। वह यह कि राष्ट्रपति यदि सेना में बहुत ख्याति प्राप्त कर ले तो वह तानाशाह बन देश का स्वतंत्र शासक भी बन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सकता है। इसका विरोध तो राष्ट्र ही कर सकता है। यह स्थिति वही है जो सन् १९७५ में भारत के प्रधानमंत्री की आज्ञा से हो गयी थी। उस स्थिति को प्रधानमंत्री ने स्वयं ही वापस लिया था। क्यों ? यह अभी तक स्पष्ट नहीं। भिन्न-भिन्न लोगों ने इसमें अपने-अपने अनुमान लगाये हैं।

राष्ट्रपति पर अंकुश राज्य सभा का राष्ट्र की अन्य समितियों से मिल कर ही ठीक उपाय है।

निर्वाचनों में ठीक प्रतिनिधि निर्वाचित हों और राष्ट्रपति राष्ट्र की मान-प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला हो, ऐसी ही कामना हम करते हैं। परन्तु यह निश्चित है कि केवल कामना करने से यह नहीं हो सकता। इसके लिए देश की शिक्षा का स्तर ऊंचा होना चाहिए।

शिक्षा का अभिप्राय हम बता चुके हैं। यह इन्द्रियों के प्रशिक्षण (training) से भिन्न है। मन, बुद्धि, जीवात्मा में श्रेष्ठ स्वभाव की शिक्षा होनी चाहिए।

इसी के लिए हमने राष्ट्र की अन्य समितियों से शिक्षा को एक पृथक् स्थान दिया है। वर्तमान शिक्षा तो केवल प्रशिक्षण मात्र है। इसका वास्तविक शिक्षा के साथ सम्बन्ध नहीं है।

वर्तमान शिक्षा में केवल एक विषय है, जिसका सम्बन्ध वास्तविक शिक्षा के साथ है और जो राष्ट्र की समितियों के निर्वाचनों में पथ-प्रदर्शन कर सकता है। वह है इतिहास का विषय।

परन्तु यदि इतिहास विदेशियों द्वारा और स्वार्थियों द्वारा भ्रष्ट किया गया हो तो वह भी किसी प्रकार की सहायता नहीं कर सकता। अतः जब हम कहते हैं कि राष्ट्र की गतिविधियों को ठीक मार्ग पर ले जाने के लिए इतिहास की शिक्षा सहायक हो सकती है तो सत्य इतिहास से ही हमारा अभिप्राय है।

जो कुछ भी इस देश में अंग्रेजी काल में और अभी तक के स्वराज्य काल में इतिहास के विषय में लिखा गया है, वह सब निर्दोष नहीं माना जा सकता। जो भी इतिहास राज्य बल की छाया में बैठ कर लिखा जायेगा, उस पर राज्य का रंग चढ़ा होगा।

ऐसे इतिहास लेखकों ने ही देश की वर्तमान दुर्दशा कर रखी है। हमारा मत है कि सन् १९४७ से आज तक जो कुछ देश में सत्ताधारी लोग करते रहे हैं, वह ही देश और जनता की वर्तमान दुर्दशा की जिम्मेदार है।

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्ड चार

# प्रथम अध्याय

## राष्ट्र के स्वरूप को संवारने का उपाय—

यह हम बता चुके हैं कि हमारे देश का नाम एक सहस्र वर्ष से ऊपर काल से हिन्दुस्तान चला आ रहा था। सिन्धु नदी से पूर्व की ओर के देश को हिन्दुस्तान कहते थे। इस देश में रहने वालों को हिन्दू कहते थे। क्योंकि सन् ७१२ से लेकर सन् १९४७ तक देश में मज़हबी राज्य रहा और देश के राष्ट्रभक्त उस मज़हबी राज्य का विरोध करते रहे, इस कारण राष्ट्र-भक्त सत्ताधारी मज़हब के विरोधी भी मज़हबी समझे जाने लगे थे। वस्तस्थिति ऐसी नहीं थी। देश और राष्ट्र की रक्षा में लड़ने वाले तो राष्ट्र के सभी मजहबों को राष्ट्र की विभूति मानते थे। यह तो विदेशीय मज़हबी लोगों ने उनके शासकों का विरोध करने वालों को मज़हबी प्रसिद्ध किया है।

इस दिशा में अंग्रेजी राज्य ने सबसे अधिक यत्न किया। अंग्रेजी राज्य भारत में मजहबी राज्य था और उन्होंने इस्लाम से गठजोड़ करके हिन्दू को एक मज़हबी समुदाय प्रसिद्ध करने का षड्यंत्र किया।

अंग्रेजी राज्य का विरोध प्रायः हिन्दू ही करते रहे थे। सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में अधिकांश हिन्दू शासक तथा सिपाही ही सम्मिलित थे। सन् १८५७ के संग्राम के उपरान्त भी राज्य का विरोध करने वाले हिन्दू ही थे। यह विरोध मज़हबी नहीं था। यह राष्ट्र की ओर से विरोध था, परन्तु अंग्रेजों ने इसे मज़हबी करार दिया। यह इस कारण कि अंग्रेजी राज्य स्वयं एक मज़हबी राज्य था और उन्होंने देश में एक दूसरे मज़हबी अर्थात् मुसलमानों से गठजोड़ करने का यत्न किया था। उस समय मुसलमानों में सैय्यद अहमद नेता बन चुका था।

यह कहा जाता है कि अपने जीवन के आरम्भ में तो सैय्यद अहमद एक गैर-मज़हबी विचार का व्यक्ति था। इस बात का प्रमाण श्री प्यारेलाल अपनी पुस्तक 'महात्मा गांधी' के प्रथम खण्ड में यह देते हैं कि सन् १८७७ में मुसलमानों का एक डेपुटेशन वायसराय से मिलने गया था और उस डेपुटेशन में सैय्यद अहमद भी सम्मिलित थे। उस डेपुटेशन द्वारा प्रस्तुत प्रज्ञापन में कुछ ऐसी बातें भी हैं जो मज़हब से ऊपर मुल्की-रंग रखती थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हम समझते हैं कि प्यारेलाल की यह धारणा मिथ्या थी। सन् १८७७ से पहले सन् १८७५ में सर सैय्यद अहमद ने अलीगढ़ में 'ऐंग्लो ओरिएण्टल कालेज' की स्थापना की थी। उसका यत्न था कि यह कालेज ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के नमूने पर बने। केवल ईसाईयत के स्थान इस्लाम का प्रचार करना ही मात्र अन्तर था।

डेपुटेशन जो सन् १८७७ में वायसराय हिन्द को मिलने गया था, उसमें कुछ अन्य भी सदस्य थे। अतः उस डेपुटेशन द्वारा प्रकट किये विचार सैय्यद अहमद के प्रतीत नहीं होते।

श्री प्यारेलाल गांधी के शिष्य रहे हैं और गांधीजी तो मौलाना मुहम्मद अली को भी देश के नेता का पद देते थे। सन् १९२३ की कांग्रेस के मौलाना प्रधान भी थे। यह मौलाना वही व्यक्ति था जो यह घोषणा करता फिरता था कि एक मुसलमान बदकार औरत भी गाँधी से बेहतर है।

अतएव हमारा यह मत है कि श्री प्यारेलाल का अनुमान गलत है और श्री प्यारेलाल जैसे व्यक्ति द्वारा लिखा इतिहास देश के राष्ट्र का ठीक परिचायक नहीं हो सकता।

अंग्रेज का राज्य भी मज़हबी था। कम्पनी के राज्य की स्थापना के समय अर्थात् सन् १७५७ से ही ईसाई पादरियों को देश में ईसाईयत का प्रचार करने के लिए कम्पनी के फण्ड में से सहायता दी जाती थी। कानून के विरुद्ध भी, उनको शासन का अंग समझ राज्य का संरक्षण दिया जाता था। जब-जब भी सरकार को किसी कर्मचारी की आवश्यकता होती थी तो देशीय हिन्दू अथवा मुसलमान से देशी ईसाई को उपमा दी जाती थी। यह चलती रही सन् १९१० तक। सन् १९१० तक रेल में डिब्बे युरोपियनों के लिए पृथक् आरक्षित लिये जाते रहे हैं और उनमें देशी ईसाई, युरोपियन समझ कर स्थान पा जाते थे। तत्कालीन राज्य में ईसाई होने से वह युरोपियन बन जाता था अर्थात् वह शासक जाति का माना जाता था।

इस कारण ही हमारा मत है कि अंग्रेजी राज्य मज़हबी राज्य था। राष्ट्र के स्वराज्य के लिए संघर्ष में किसी भी प्रमुख ईसाई ने कभी भाग नहीं लिया। वे अंग्रेज शासकों का पक्ष लेते थे और अंग्रेज अधिकारी भी ईसाईयों को ऐसा पद देते थे।

यह ठीक है कि कुछ भूले भटके मुसलमान कांग्रेस में सम्मिलित होते रहे हैं और कदाचित् कुछ ईसाई भी भाग लेते रहे हों, परन्तु कहावत है—one solitary swallow does not make spring। इसी प्रकार विरले ईसाई और मुसलमानों के स्वराज्य आन्दोलनों में सम्मिलित होने से ईसाई और मुसलमानों का स्वराज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आन्दोलन में भाग लेना नहीं समझा जा सकता। सर सैय्यद अहमद और उसके पीछे मुहम्मद इकबाल के उदाहरण उल्लेखनीय हैं।

हम यह बता रहे हैं कि किसी देश के राष्ट्र को उज्ज्वल करने के लिए प्रथम बात यह है कि राष्ट्र का सम्बन्ध देश के इतिहास से जोड़ा जाये।

देश के इतिहास को विकृत करना आरम्भ किया था ईसाई पादरियों ने, उसके उपरान्त ईसाई सरकार द्वारा स्थापित विश्वविद्यालयों की शिक्षा ने और उस मिथ्या शिक्षा को प्राप्त किये देश में घूम रहे अंग्रेजी पढ़े-लिखों ने।

यहां हम अंग्रेजी की निन्दा करते हैं तो केवल अंग्रेजी भाषा के दोषों के कारण नहीं। वे तो हैं ही, परन्तु हमारा आशय अंग्रेजी में लिखा दूषित साहित्य है। इस भाषा के पढ़े पण्डित जवाहरलाल नेहरू की महिमा गांधीजी ने बढ़ा दी थी। वास्तव में गांधी स्वयं अंग्रेजी की उपज थे। उन्हें संसार में टालस्टाय और थारू ही सबसे बड़े विद्वान समझ आये थे और अपने देश के महा पुरुषों में गांधीजी राम और कृष्ण को ऐतिहासिक पुरुष मानते ही नहीं थे। यदि गांधी जी किसी विद्वान्, हिन्दू शास्त्रों के ज्ञाता की संगत में रहे होते तो कदाचित् वह थारू और टालस्टाय को भूल जाते। परन्तु जो व्यक्ति बचपन से अभारतीय परम्पराओं में पला हुआ 'अंग्रेजी साहित्य' का दास बन चुका था, उसे बाबू राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल आदि के स्थान जवाहर लाल पसन्द आना स्वाभाविक ही था।

हम अंग्रेजी पढ़े-लिखों के ज्ञान की बात कर रहे हैं। गीता का पाठ करने वालों में महात्मा गाँधी की भी गणना की जाती है। परन्तु गांधी जी पर गीता का प्रभाव तो ऐसे ही था जैसे कचालू के पत्ते पर जल की बूंद का होता है। गांधी जी के शिष्य अथवा रहनुमा जवाहरलाल तो कार्लमार्क्स को इस युग का अवतार तक मानते थे।

अतः हमारा यह मत है कि हिन्दू राष्ट्र का नाम भले ही भारतीय राष्ट्र हो जाये, परन्तु राष्ट्र की महिमा भरत, जिससे इस देश का नाम भारत पड़ा है, से लेकर कृष्णपर्यन्त महापुरुषों के सत्य कथनों और उपदेशों के अनुसार होने से ही होगी।

शिक्षा का विषय मन, बुद्धि और जीवात्मा है। इस कारण प्रथम बात यह है कि इनके विषय में भारतीय साहित्य में सर्वश्रेष्ठ पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता ग्रन्थ है। यह आधार बननी चहिये—राष्ट्र की शिक्षा का।

यह सात सौ श्लोकों की एक छोटी-सी पुस्तक है, जो सवा लाख श्लोक के एक महान् ग्रन्थ महाभारत का सार है।

अतएव शिक्षा का उद्धार करने की इच्छा रखने वाले पहले भगवद्गीता का अध्ययन कर लें, तब राष्ट्र का मुख उज्ज्वल करने के उपाय करें। हमारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अभिप्राय है कि राष्ट्र की शिक्षा के विचार का आरम्भ भगवद्गीता से होना चाहिये।

गीता में तो वक्तव्य मात्र हैं। कथन मात्र को कोई मानने से इनकार भी कर सकता है, परन्तु इस कथन का आधार ब्रह्मसूत्र, योग दर्शन और सांख्य-दर्शन हैं। इन तीनों दर्शनों में गीता की पूर्ण शिक्षा को बुद्धिगम्य करने के लिए युक्तियां और तर्क दिये हैं।

अतः हम किसी भी शिक्षा को पूर्ण नहीं समझते, जब तक उसमें गीता को स्थान न हो और उस गीता में कहे कथनों को सिद्ध करने के लिए वेदान्त दर्शन और सांख्य दर्शन की शिक्षा सम्मिलित न हो।

यहां हम यदि भगवद्गीता और इन दर्शनशास्त्रों का कुछ परिचय दे दें तो ठीक होगा।

जब दुर्योधन ने युधिष्ठिर का राज्य वापस करने से इन्कार कर दिया और दुर्योधन को सब प्रकार समझ कर भी कृष्ण राज्य वापस दिलाने में सफल नहीं हुए तो इन चाचा ताऊ के पुत्रों में युद्ध की तैयारी हो गयी। स्वभाविक रूप में युद्ध में दोनों ओर सगे सम्बन्धी ही थे। ठीक युद्ध के पूर्व जब दोनों ओर की सेनाएं युद्ध भूमि पर आमने-सामने आ खड़ी हुई तो अर्जुन के मन में एक विचार उठा कि वह युद्ध स्वार्थ के लिए कर रहा है और इस स्वार्थ का विरोध अपने ही भाई दुर्योधन के स्वार्थ से हो रहा है। दोनों ओर भाई और इन दोनों के पक्ष में सब परस्पर सम्बन्धी ही थे और घातक शस्त्र लेकर एक दूसरे की हत्या करने के लिए आ खड़े हुए थे। अर्जुन को समझ आया कि यह अनर्थ हो रहा है।

अर्जुन विचार करने लगा कि दुर्योधन तो महामुर्ख है, वह इस गृह-कलह का परिणाम नहीं समझता, परन्तु वह स्वयं तो समझता है कि दोनों ओर से घर के ही प्राणी मरेंगे।

इस विचार से उसका मन युद्ध से उपराम हो गया और वह युद्धभूमि से लौटने का विचार बना बैठा।

उसके रथ के सारथी कृष्ण को जब अर्जुन के विचारों का पता चला तो उसने उसे डांटा और कहा कि इतनी दूर तक पहुंच कर, जब पचपन लाख के लगभग योद्धा युद्ध भूमि पर इकट्ठे हो गये हैं तब युद्ध से भाग कर कायरता दिखाओगे।

इस डांट-फटकार का तो कुछ प्रभाव नहीं हुआ, परन्तु कृष्ण के उपदेश का प्रभाव हुआ।

कृष्ण ने जो कुछ कहा, उसे महाभारत के लेखक श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ने सात सौ श्लोकों में बद्ध कर दिया है। कृष्ण का कहना था—कोई किसी के मारने से नहीं मरता। अपनी मृत्यु से ही उसकी मृत्यु होती है और मृत्यु के विषय में कहा है—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद् युध्यस्व भारत।।
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।[१]

अन्त वाली तो यह देह है, परन्तु शरीरी (जीवात्मा) नित्य कहा जाता है। जीवात्मा नष्ट नहीं होता। वह विकाररहित है। इसे शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता, न ही हवा सुखा सकती है।

इस जीवात्मा में छिद्र नहीं हो सकता, यह जल नहीं सकता, न ही हवा इसे सुखा सकती है न यह गल सकता है। यह नित्य है, सब जगह जाने वाला है, ठहरा हुआ अचल और सनातन है। इस कारण तू किसके मरने से युद्ध को छोड़ भागा जा रहा है। तू आत्मा है। तू और ये जो सब जो खड़े हैं, शरीर नहीं हैं।

शरीर तो जड़ है। वह युद्ध करने नहीं आया। युद्ध करने जीवात्माएं आयी हैं और वे मरती नहीं।

कृष्ण ने और भी कहा—तुम इस शरीर के नाश होने से भयभीत हो। यह तो ऐसी ही है जैसे—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।[२]

पुराने वस्त्रों को उतार कर नये पहन लिये जाते हैं। इसी प्रकार इस शरीर को छोड़ कर नई देह प्राप्त कर ली जाती है।

यह सार है गीता का। इसी विषय को श्री व्यास जी ने गीता के तेरहवें अध्याय में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के नाम से समझाने का यत्न किया है। उस अध्याय में कहा है—

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।

---

१. भगवद्गीता २-१८, २३, २४
२. भगवद्गीता २-२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥[1]

यह शरीर क्षेत्र है। जो आत्म-तत्त्व इसको ऐसा जानता है, वह क्षेत्रज्ञ है। हे अर्जुन ! तू परमात्मा को भी क्षेत्रज्ञ जान। वह सब क्षेत्रों को जानता है।

शरीर में दो आत्म-तत्त्व रहते हैं। एक जो केवल उस शरीर को ही जानता है और दूसरा क्षेत्रज्ञ सब शरीरों में रहता है और सब के विषय में जानता है। इस ज्ञान को जानने वाले तत्त्वज्ञानी हैं।

इसी बात को अधिक व्याख्या से इसी अध्याय में आगे चल कर कहा है—

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥
कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥
पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥
उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाऽप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः ॥[2]

प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा) दोनों अनादि (सदा से) हैं। प्रकृति में गुणों (सत्त्व, रजस्, तमस्) के कारण यह रचना कार्य होता है।

शरीर और इन्द्रियों को बनाने में कारण (इसका उद्देश्य) है—जीवात्मा। वह अपने कर्मानुसार सुख, दुःख भोगने के लिये इसका हेतु बन जाता है। अर्थात् जीवात्मा को अपने कर्मों का फल देने के लिये यह शरीर और इन्द्रियां निर्माण हुई हैं।

प्रकृति के गुणों (सत्त्व, रजस् तमस्) के कारण ही उनको भोगने के लिये जीवात्मा शरीर में ठहरा रहता है। स्वरूपवान् अस्वरूपवान् प्रकृति के गुणों से ही वह सुख-दुःख भोगता है।

परन्तु सम्मति देने वाला, सब कुछ देखने वाला, सब की रक्षा करने वाला और सब को मार डालने वाला महेश्वर (महान् सृष्टि का मालिक) परमात्मा ही है और जीवात्मा जो ऊपर कहा है, वह दूसरा है।

इस प्रकार हिन्दू अर्थात् वेद की मीमांसा का सार इस अध्याय में वर्णित है और साथ ही महर्षि व्यास ने कहा है—

---

१. **भगवद्गीता** १३-१, २
२. **भगवद्गीता** १३-१९, २०, २१, २२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।।[1]

यह जो कुछ इस अध्याय में कहा है, ऋषियों ने वेदों में इसको विविध प्रकार से कह दिया है। ब्रह्मसूत्रों में भी इसको व्याख्या सहित युक्ति से सिद्ध किया है।

यह है शिक्षा जो हम हिन्दू राष्ट्र के घटकों को देना चाहते हैं। इस शिक्षा को प्राप्त कर मनुष्य का जीवन ऊर्ध्व गति की ओर जाता है। इससे ही राष्ट्र का मुख उज्ज्वल होगा तथा राष्ट्र संवरेगा। यह शिक्षा मत-मतान्तर रहित है।

——

# द्वितीय अध्याय

## बुद्धि का विकास

गीता में केवल जीवात्मा और शरीर के विषय में ही नहीं कहा, वरन् मन और बुद्धि के विषय में भी कहा है। बुद्धि प्रत्येक प्राणी में न्यूनाधिक उपस्थित रहती है। मनुष्य की बुद्धि अति श्रेष्ठ है। इस पर भी सब मनुष्यों में यह एक समान श्रेष्ठ नहीं होती। अपने पूर्वजन्म के कर्मों से भिन्न-भिन्न मात्रा में यह प्रत्येक मनुष्य को मिलती है। यही बात मन की है।

पूर्वजन्म के कर्मों से प्राप्त मन तथा बुद्धि को वर्तमान जीवन में मनुष्य चाहे तो एक सीमा तक सुधार सकता है। इसका एक संक्षिप्त-सा उपाय गीता में भी कहा है।

वैसे यह भी कहा है कि योगाभ्यास से बुद्धि को इसकी पराकाष्ठा तक ले जाया जा सकता है।

योगाभ्यास का स्वरूप योगदर्शन में मिलता है। वहाँ कहा है कि योग के आठ अंग हैं।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।।[2]

---

१. भगवद्गीता १३-४
२. योगदर्शन २-२९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अर्थ हैं—यम का पालन करो। यम हैं पांच—१. अहिंसा; २. सत्य; ३. अस्तेय; ४. ब्रह्मचर्य तथा ५. परिग्रह।

इनका अभिप्राय इस प्रकार है—मन, वचन, कर्म से भले लोगों को दुःख न देना अहिंसा कही जाती है। जो जैसा है, वैसा ही कहना अथवा अपने व्यवहार से प्रकट करना सत्य व्यवहार है। जो अपने परिश्रम से अर्जित नहीं है, उसे न लेना अस्तेय है। जीवन को नियमबद्ध और नियंत्रण में रखना ब्रह्मचर्य है और दूसरे के अधिकार को स्वयं न लेना अर्थात् लालच न करना परिग्रह है।

पांच ही नियम हैं—१. शौच; २. संतोष; ३. तपः; ४. स्वाध्याय तथा ५. ईश्वर प्रणिधान।

मन, वचन और शरीर से शुद्ध पवित्र रहना, यह शौच है। जितना मिले उतने पर ही प्रसन्न रहना संतोष है। किसी फल प्राप्ति के लिये निरन्तर यत्न करते रहने को तपः कहते हैं। जिस विषय में कुशलता प्राप्त करनी हो, उसका स्वाध्याय करते रहना चाहिये। उसका अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करते रहना स्वाध्याय है और कर्म के फल की प्राप्ति के लिये परमात्मा पर विश्वास रखना ईश्वर प्रणिधान है।

ये प्रारम्भिक अभ्यास हैं योग साधना के लिये। इनके अतिरिक्त तीन अन्य अभ्यास हैं। तीसरा है—आसन। आसन का अभिप्राय है बैठने का स्थान। वह ऐसा होना चाहिये जहां बैठकर कर्म जो करना हो, सुविधा से किया जा सके।

स्थिरसुखमासनम् ॥[1]

साधना करते हुए अर्थात् कार्य सिद्धि करते हुए स्वाध्यायादि के लिये बहुत देर तक बैठने की आवश्यकता होती है। इस कारण बैठने का स्थान स्थिर होना चाहिये—जो हिलता डोलता न हो और जहां बिना थकावट के चिरकाल तक बैठा जा सके।

प्राणायाम है सांसों को नियमबद्ध करना। इससे चित्त विचार करने की क्षमता) में स्थिरता आती है। पंचम अभ्यास है प्रत्याहार। प्रत्याहार का अभिप्राय है इन्द्रिय-निग्रह।

इन पांच—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार के अभ्यास के उपरान्त ध्यान एकाग्र करने के तीन स्तर बताये हैं—१. धारणा, २. ध्यान तथा समाधि। हमारा इनको यहां बताने का अभिप्राय यह है कि ये बुद्धि के विकास

१. योगदर्शन २-४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में सहायक होते हैं। किसी को पूर्वजन्म से हीन बुद्धि मिली हो तब भी वह इन उपायों से बुद्धि में सुधार कर सकता है।

योगाभ्यास से विशेष बुद्धि की प्राप्ति होती है, जिसका नाम योगदर्शन के प्रवक्ता ने 'ऋतम्भरा' कहा है। इससे बुद्धि में विशेष शक्ति आ जाती है जो इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान से ऊपर है। ऋतम्भरा के विषय में कहा है—

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ।।

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ।।[1]

अर्थ है—वहां बुद्धि ऋतम्भरा हो जाती है।

और तब इद्रियों से जाने जा सकने वाले ज्ञान से और उससे लगाये जाने वाले अनुमान से विषय का दूसरा ही दर्शन होता है।

दूसरे से अभिप्राय असत्य नहीं है। सत्य प्रकृति के गुह्य स्थानों में छुपा रहता है। ऋतम्भरा उस छुपे को प्रकट करने की सामर्थ्य रखती है।

योगाभ्यास का फल और प्रयोजन प्रायः लोग परमात्मा की प्राप्ति समझते हैं। परन्तु योगाचार्य इसके दो प्रयोजन समझता है। योग का सर्वोत्क्रष्ट लक्ष्य समाधि है। समाधि दो प्रकार की कही है।

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ।।[2]

अर्थ है—इसी से (पूर्व में सवितर्क और निर्वितर्क के वर्णन से) सविचार और निर्विचार दो प्रकार के सूक्ष्म विषय माने जाते हैं।

सूक्ष्म विचार दो प्रकार के हैं---सविचार और निर्विचार। सविचार का अभिप्राय है—लक्ष्य-सहित और निर्विचार है—लक्ष्यहीन।

लक्ष्य-सहित समाधि होती है—

परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ।।[3]

अर्थ है—सूक्ष्मतम पदार्थ हैं परमाणु और विशालतम पदार्थ है व्योम (space)। इन दोनों सीमाओं में सब कुछ जानता है, सविचार समाधि वाला।

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदंजनता समापत्तिः ।।[4]

---

१. योगदर्शन १-४८, ४९
२. योगदर्शन १-४४
३. योगदर्शन १-४०
४. योगदर्शन १-४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अर्थ है—नष्ट हो गयी हैं सर्व वृत्तियां जिसकी, उस योगी के निर्मल चित्त (मन, बुद्धि और जीवात्मा) की ग्रहण शक्ति और विषय (जिसका ज्ञान प्राप्त करना है)—उनमें तद्रूपता (एकमयता) प्राप्त हो जाती है।

अभिप्राय यह है कि मनुष्य परमाणु से पूर्ण व्योम की बात को समझ जाता है। इस समाधि का नाम समापत्ति है।

इसी कारण हमारा यह आग्रह है कि स्कूलों-कालिजों में इस प्रकार की समाधि का अभ्यास भी कराना चाहिये। इससे विद्यार्थियों की बुद्धि निर्मल होगी और वे अपने विषय को भलीभांति समझ सकेंगे।

यहां समाधि लगाने के उपाय नहीं बताये जा सकते। इस पर भी भगवद्-गीता में एक सरल-सी विधि कही है। उसका प्रयोग तो कराया ही जा सकता है। गीता में कहा है—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥[1]

अर्थ है—शुद्ध स्थान पर मृग-छाल अथवा कुशासन पर बैठे। न बहुत ऊंचे स्थान पर, न ही बहुत नीचे स्थान पर, शुद्ध पवित्र वस्त्र धारण किये हों।

ऐसे स्थान पर बैठ कर मन को एकाग्र कर के चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में करके अन्तःकरण (जीवात्मा) की शुद्धि के लिये योग-क्रियाओं का अभ्यास करे।

शरीर को, सिर को और ग्रीवा को एक समान (सीधा) कर स्थिर होकर नाक के अग्रभाग को देखते हुए दूसरी दिशाओं को देखना छोड़ दे। इस प्रकार एकाग्र चित्त होकर उस वस्तु का चिन्तन करे, जिसके लिये वह समाधि लगा रहा है तो उस वस्तु को समझने में बहुत सहायता मिलेगी।

जैसे पाठशाला में भाषा, गणित, स्थानीय भूगोल और इतिहास का सामान्य ज्ञान, विद्यालय में उच्च गणित, इतिहास, भूगोल तथा अपने शरीर एवं इन्द्रियों का ज्ञान दिया जाये तथा महाविद्यालय में किसी विशेष, एक अथवा दो विषयों का विशेष ज्ञान प्राप्त कराया जाये, वैसे ही इस पूर्ण काल में प्राणायाम तथा ध्यान एकाग्र करने का अभ्यास भी कराना चाहिये।

---

१. भगवद्गीता ६-११, १२, १३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा यह निश्चित मत है कि भगवद्गीता विद्यालय और महाविद्यालय स्तर पर पढ़ाई जानी चाहिये। विज्ञान के विद्यार्थियों को ब्रह्मसूत्र तथा सांख्य का ज्ञान कराना चाहिये। यह शिक्षा का केन्द्र बिन्दु कहा जायेगा।

श्रेष्ठ शिक्षा होने से राष्ट्र का स्वरूप उज्ज्वल होगा, राष्ट्र में अपराधों की कमी होगी और राज्य का कार्य सहज हो जायेगा तथा राष्ट्र सबल होगा।

इस शिक्षा से तकनीकी उन्नति में भी सफलता मिलेगी।

विद्यालय की पढ़ाई के उपरान्त अधिकांश विद्यार्थी जीविकोपार्जन के काम में लग जाने चाहियें और प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को तकनीकी विद्यालयों में अथवा उच्चस्तरीय ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा में बैठ जाना चाहिये। विद्यालय की अन्तिम परीक्षा-लेने वाले परीक्षकों को को यह सम्मति देने का अधिकार होना चाहिये कि बालक तथा बालिका तकनीकी शिक्षा की ओर जायें अथवा उच्च ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की ओर।

हमारा निश्चित मत है कि पूर्ण शिक्षा निःशुल्क होनी चाहिये और तकनीकी तथा उच्च-स्तरीय ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा के लिये विद्यार्थियों का पूर्ण बोझा राष्ट्र पर होना चाहिये।

राज्य तथा अर्थ-समितियों को इसका प्रबन्ध करना चाहिये।

---

# तृतीय अध्याय

## राष्ट्र और मज़हब

हिन्दू तथा भारतीय नाम मज़हबी नाम नहीं हैं। भारतीय नाम के विषय में हमें केवल इतनी ही आपत्ति है कि यहनाम अंग्रेजी पढ़े-लिखे बुद्धिविहीनों ने मुसलमानों से डर के कारण धारण किया है। हम दोनों नामों में अन्तर नहीं मानते। दोनों भौगोलिक नाम हैं। भारतवर्श यानि भारत, यह उस देश का नाम था जो हिमालय से सागर-पर्यन्त और सिन्धु नदी से ब्रह्मपुत्र नदी तक फैला हुआ था। हिन्दुस्तान भी इसी का नाम पड़ गया था। दोनों नामों में मज़हब की गन्ध नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अतः मज़हब का राष्ट्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस पर भी जो मज़हब किसी नागरिक की श्रद्धाभक्ति और राजनीतिक दृष्टि को देश के बाहर ले जाये, वह मज़हब देश के राष्ट्र का अंग नहीं हो सकता।

राजनीतिक दृष्टि से भूमण्डल के मुसलमानों की दृष्टि देश से बाहर रहती है। इस कारण यह प्रश्न है कि भारत राष्ट्र में मुसलमानों का क्या स्थान हो?

हमने एक मापदंड नियत किया है। इस्लाम में राजनीति और मज़हब दोनों का मिश्रण है। इस्लाम को केवल मज़हब की सीमा में रहना पड़ेगा और देश से बाहर की राजनीति को देश की राजनीति से पृथक् करना होगा। तब ही यह भारत राष्ट्र का घटक हो सकता है। अभी तक मुसलमानों ने अपने को एक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक शक्ति के रूप में विचार करना नहीं छोड़ा। इस कारण उनका स्थान भारत राष्ट्र में किस प्रकार हो सकता है?

अभी तक मुसलमानों ने अपने सामाजिक सम्बन्धों को देश के अन्य समुदायों से पृथक् रखा है। साथ ही 'येन केन प्रकारेण' वे देश में अपनी जनसंख्या की वृद्धि में यत्नशील हैं। इस कारण जो अपने सामाजिक सम्बन्धों को देश के कानून के अनुसार रखना चाहते हैं, जो मज़हब को एक खुली किताब की भांति वाद-विवाद का विषय समझते हैं, उनके साथ मुसलमान रह सकते हैं क्या? जो अपने मज़हब पर विवाद को पसन्द नहीं करते, परन्तु अपनी संख्या मज़हब के प्रचार के अतिरिक्त उपायों से बढ़ाने में लगे हैं और देश के समाज के समान होकर नहीं रहना चाहते, उनको राष्ट्र का अंग कैसे माना जा सकता है?

हमारा केवल एक मापदंड है। वह मुसलमान और ईसाई दोनों के लिये एक ही है। मज़हब का सम्बन्ध है व्यक्तिगत आचार-विचार के साथ। जब मज़हब एक समुदाय के संगठन का और देश के अन्य समुदायों से पृथक् होगा तो वह राष्ट्र से बाहर रहेगा। यदि उनकी देश में बहुसंख्या होगी तो ये लोग भारत में भी वही कुछ करेंगे जो वे पाकिस्तान, ईरान अथवा अन्य इस्लामी देशों में अल्पसंख्यकों के साथ कर रहे हैं।

पाकिस्तान में मुसलमान प्रथम दर्जे का नागरिक है और मुसलमान के अतिरिक्त अन्य मज़हब वाले मुसलमान के बराबर अधिकार नहीं रखते। क्या हिन्दुस्तान के मुसलमान भी यही विचार रखते हैं? अब जब ये अल्प संख्या में हैं, वे इस विषय में मौन रह कर, अधिक बीवियाँ रख कर, धोखाधड़ी और औरतों का प्रलोभन देकर अपनी जनसंख्या बढ़ा रहे हैं, तो यह चिन्ता का विषय ही है, विशेषतया जब तक वे अपने को अन्य इस्लामी देशों की राजनीति का विरोधी नहीं सिद्ध कर देते।

ईसाईयों के विषय में भी यही बात है। जहां-जहां भी इनका बस चलता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वे मज़हबी राज्य चलाने का यत्न करते हैं। अभी जो कुछ त्रिपुरा में हुआ है और नागालैंड में स्वराज्यारम्भ से हो रहा है, यह कम चिन्ता का विषय नहीं।

जब कोई सही दिमाग व्यक्ति ऐसा कानून बनवाना चाहता है, जिससे मजहब का प्रचार धन, औरत और अन्य सांसारिक सुख-सुविधाओं के बल पर किया जाना वर्जित हो तो ईसाई क्यों वा-वेला करें? जो बल, छल, धोखाधड़ी प्रयोग करने का अधिकार चाहते हैं, भला वे कैसे देश और राष्ट्र का अंग बन सकते हैं?

मज़हब व्यक्तिगत प्रश्न है। यह एक व्यक्ति का विचार समूह है। उस पर विचार-विनिमय खुले रूप में होना चाहिये। जो खुले में विवेचना से तो कानून का संरक्षण चाहते हैं और धोखाधड़ी एवं धन-जन के प्रलोभनों से मजहब का प्रचार चाहते हैं, उनके लिये देश के भले लोगों के समान अधिकार का प्रश्न ही नहीं उठता।

भारत के विभिन्न मजहबों में सगुण परमात्मा और निर्गुण परमात्मा पर विवाद चलता है। इसे अवतारवाद भी कहते हैं। खुले आम इस पर चर्चा होती है। एक ओर लोग हैं जो राम को परमात्मा का अवतार कहते हैं और दूसरी ओर उसे साधारण मनुष्य के समान भूल करने वाला मानने वाले भी हैं। दोनों ओर से विचार प्रकट किये जाते हैं और हिन्दुओं में आपत्ति नहीं की जाती।

परन्तु यह बात मुसलमानों और ईसाईयों में नहीं है। हजरत मुहम्मद साहब के जीवन पर किंचित् मात्र भी कुछ कहने वाले के पेट में छुरा घोंप दिया जाता है; इंडियन पीनल कोड की धारा १५३-ए कार्य करने लगती है। ये राष्ट्र का अंग बनने के लक्षण नहीं वरन् राष्ट्र को अपने अधीन करने की बातें हैं।

क्या यहां गिनती करानी पड़ेगी कि कितने हिन्दुओं की हत्याएँ मुसलमानों ने अपने राज्यकाल में तथा ब्रिटिश काल में की हैं, केवल मज़हब के नाम पर?

अब यही बात ईसाईयों ने करनी आरम्भ कर दी है। इस कारण हम सब नागरिकों के लिये यह समान नियम चाहते हैं। मज़हब कोई गोली, बंदूक तथा छुरे से रक्षित विचार नहीं है। बंदूकें, तोपें देशों की रक्षा के लिये प्रयुक्त होती हैं, मानव विचारों के लिये नहीं। जो अपने मज़हब और मजहबी रहनुमाओं को रेशम की थैली में लपेट कर रखना चाहते हैं, वे मज़हब नहीं हैं। वे राजनीतिक षड्यंत्र हैं।

मज़हब शान्ति से विचार-विनिमय का विषय है। यदि इसको छुरों, बंदूकों से चलाना है तो फिर राष्ट्र का अंग बन कर नहीं हो सकता।

हमारा यह अभिप्राय नहीं कि इस्माल के वे व्यवहार, जो शान्तिपूर्वक रह कर चलाये जा सकते हैं, न चलें। परन्तु उन विचारों पर खुले रूप से विचार-विनिमय हो, वाद-विवाद हों और फिर नागरिक स्वेच्छा से जो चाहें, मानें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



परन्तु जब इस्लाम की उत्पत्ति, इसके प्रयास और इस द्वारा की गई मानवता विरुद्ध बातों की आलोचना की जाये और उसके लिये एक ओर तो कानून का संरक्षण पाया जाये और दूसरी ओर छुरे तथा बंदूकें चलायी जायें, तब यह विचार करना ही होगा कि यह मज़हब है अथवा राष्ट्र विरोधी अभियान।

राष्ट्र की कल्पना में हमने वेद में कहे दस लक्षण बताये हैं। उनसे राष्ट्र में किसी भी मज़हब का विरोध नहीं रह जाता। परन्तु यह भी है कि किसी मज़हब को राष्ट्र का विरोध करने की स्वीकृति नहीं। राष्ट्र और देश की रक्षा के लिये देश में शूरवीरों की सृष्टि प्रथम कर्तव्य माना है।

अतः हिन्दू राष्ट्र अथवा भारतीय राष्ट्र एक खुली समाज (free society) है। इसमें सिक्ख और केश-विहीनों के झगड़े, इस्लाम और गैर-इस्लाम के झगड़े, बौद्ध और शैवों के झगड़े नहीं चलने दिये जा सकते।

ऐसी ही हिन्दू राष्ट्र की कल्पना है। भारतीय राष्ट्र भी ऐसा हो सकता था परन्तु कांग्रेसी 'महापंडितों' ने भारत का नाम इतना बदनाम कर दिया है कि यहां देश के मजहबों को नीच, घृणित और विदेशी मजहबों को कानून, पुलिस तथा सेना का संरक्षण देना स्वीकार किया जा रहा है। इस प्रकार के भारतीय राष्ट्र से लज्जा अनुभव होती है।

यही कारण है कि हम हिन्दू नाम को स्वीकार करने का आग्रह कर रहे हैं। भारत नाम की वकालत करने वालों को तनिक सन् १९४७ से लेकर सन् १९८० तक मुसलमानों द्वारा मचाये दंगों की गणना करनी चाहिये। उन पर बैठाई जांच कमीशनों की रिपोर्टों को निकलवा कर पढ़ना चाहिये। तब ही वे भारत नाम की वकालत कर सकते हैं।

भला यह बात कैसे विस्मरण की जा सकती है कि नेपाल नरेश जब एक हिन्दू संस्था के उत्सव में सम्मिलित होने के लिये आना चाहता था तो उसे मना कर दिया गया और रोम के पोप को बम्बई में हो रही ईसाईयों की कान्फ़्रेंस में न केवल आने दिया गया, वरन् देश का प्रधानमंत्री उसका स्वागत करने के लिये दिल्ली से बम्बई नंगे पांव भागा-भागा गया।

भारत नाम के वकीलों को अपने मुख शर्म से ढांप लेने चाहियें।

अतः हमारा आग्रह है कि हिन्दू राष्ट्र के विषय पर विचार करना चाहिये। इसको स्वीकार कर लेने से कुछ हानि होगी क्या?

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उपसंहार

हिन्दू नाम पर हमारा इतना आग्रह नहीं है जितना हिन्दू शब्द से प्रकट होने वाले भावों से है। हिन्दू शब्द न तो साम्प्रदायिक है, न ही किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित है। बहुत प्राचीन काल में भरत नाम का एक व्यक्ति देश का राजा बना था। राज्य भोगते-भोगते उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह राज्य अपने पुत्र को देकर वनों में तपस्या करने चला गया। उसी के नाम पर इस देश का, जो हिमालय पर्वत से सागर पर्यन्त है और सिन्धु नदी से ब्रह्मपुत्र नदी तक फैला हुआ है, नाम भारत पड़ गया। अब एक सहस्र वर्ष से इस देश का नाम हिन्दुस्तान प्रचलित है। इसी कारण इसका प्रयोग भला लग रहा है।

इससे भी बढ़कर एक कारण है जिससे यह नाम अति प्रिय हो गया है। हमारे पूर्वज हिन्दू नाम पर एक सहस्र वर्ष से साम्प्रदायिक राज्यों का विरोध करते रहे हैं।

इस्लाम की तबलीग (मजहबी शरअ के अनुसार) का सात सौ वर्ष तक विरोध इसी नाम से होता रहा है और आज भी सेक्युलरिज़्म की छतरी के नीचे साम्प्रदायिक राज्य का विरोध करने के लिए हिन्दू शब्द का प्रयोग भला ही लगता है।

वर्तमान राज्य वैसे तो अपने को सेक्युलर कहता है, परन्तु उन लोगों की सदा रक्षा करता चला आ रहा है जो देश में साम्प्रदायिकता चला रहे हैं। कांग्रेस शासन ने सन् १९४७ में उन लोगों को इस देश में रखने का हठ किया था, जिन्होंने सन् १९४६ में हिन्दुस्तान के टुकड़े करने का हठ किया था। उनको यहां रखने से पूर्व उनसे अपनी माँग वापस लेने का आश्वासन भी नहीं लिया और उनके मज़हबी ज़नून को देश के रहने वाले हिन्दू मतों के विरुद्ध पनपने का अवसर दिया।

यह कहा जाता है कि सन् १९४७ से आज तक एक सहस्र से ऊपर मुसलमान हिन्दू फसाद हुए हैं। उनमें से कुछ एक की ही जांच करायी गयी है। और उन जांचों की रिपोर्ट भी छुपा कर रखी गई है। जनता को बताई नहीं गयी। इसी कारण हमारा कहना है कि यह राज्य साम्प्रदायिक है और मज़हबों का विशेष रूप में मुसलमानों और ईसाईयों का संरक्षण करता है। देश के राष्ट्रीय विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वालों को इन मज़हबी दीवानों के सम्मुख दवा कर रखा जा रहा है। अतः हमारा यह मत है कि वर्तमान राज्य प. सेक्युलर लेबल लगा कर इसके मज़हबी रूप को छुपाने का यत्न किया जा रहा है।

हिन्दू राष्ट्र का अभिप्राय किसी मज़हबी राष्ट्र से नहीं है। क्योंकि हिन्दू शब्द किसी भी मज़हब का प्रतीक नहीं है।

हिन्दू राष्ट्र की विशेषता संक्षेप में इस प्रकार है—

(१) राष्ट्र राज्य से पृथक् है। राज्य राष्ट्र का एक अंग मात्र है।

(२) राज्य के अतिरिक्त भी राष्ट्र के अंग हैं। वे हैं शिक्षा-संयत्र, अर्थ-व्यवस्था का संगठन, न्यायाधिकरण संस्थान और धर्मव्यवस्था संस्थान। इन अंगों के कार्य तथा क्षेत्र हमने पुस्तक में स्पष्ट किये हैं। हिन्दू राष्ट्र में ये अंग राज्य के समान ही सामर्थ्य तथा मान-प्रतिष्ठा युक्त हैं।

(३) राष्ट्र के इन पांचों अंगों को नियंत्रण में रखने वाला अधिकारी राष्ट्रपति होना चाहिये। राष्ट्रपति वयस्क घटकों द्वारा निर्वाचित होना चाहिये।

(४) राष्ट्रपति, राज्य-समिति, धर्म-समिति तथा न्यायाधिकरण की सम्मति से देश में व्यवस्था स्थापित करे।

(५) जब कभी किसी विषय पर विभिन्न समितियों में विरोध हो तो राष्ट्रपति उनमें समन्वय उत्पन्न करे और यदि समितियां न मानें और मतभेद बना रहे तो समितियों का नव-निर्वाचन करा कर देश के घटकों से आदेश ले।

(६) राज्य समिति वर्तमान लोकसभा की भांति और राष्ट्रपति के निर्वाचन की भाँति देश के वयस्क मतों से निर्वाचित हो।

(७) धर्म सभा, धर्म के तत्त्व (laws) को जानने वालों के द्वारा निर्माण हो, जो देश के स्नातकों द्वारा चुनी जाये।

(८) अर्थ समिति देश में अर्थ उत्पादन करने वालों की प्रतिनिधि समिति हो। इसमें भिन्न-भिन्न उद्योगों, व्यवसायों, कृषकों और कर्मचारियों की समितियों के प्रतिनिधि हों।

(९) न्यायाधिकरण समिति में सेवामुक्त न्यायाधीश ही निर्वाचित हो सकें और इनका निर्वाचन करने वाले कानून के ज्ञाता स्नातक ही हों।

ये पांच समितियाँ राष्ट्र का स्वरूप होंगी और राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रतिनिधि बनकर इनकी सम्मति से शासन तथा देश की रक्षा करे।

(१०) राष्ट्रपति का अधिकार यद्यपि न्याय-समिति पर भी हो, परन्तु इतना मात्र ही कि न्यायाधिकरण राष्ट्र की अन्य समितियों का विरोध न करने लगे। विशेष रूप में धर्म का पालन करता रहे। परन्तु राष्ट्रपति न्यायपालिका पर शासन नहीं कर सकता। न्यायपालिका राष्ट्रपति से भी ऊपर हो और कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रपति राष्ट्र के संविधान का विरोध करने लगे तो उस पर महा-अभियोग चल सके। देश का सर्वोच्च न्यायालय इस अभियान की देख-रेख करे और इस अभियान में पांचों समिमियों के प्रतिनिधि भाग लें।

(११) शिक्षा का अर्थ मन, बुद्धि तथा जीवात्मा को सिधाना है। इसको ध्यान में रखकर ही पाठशाला की प्रथम श्रेणी से लेकर महाविद्यालय की अन्तिम श्रेणी तक शिक्षा का कार्यक्रम होना चाहिये।

(१२) शिक्षा विश्वविद्यालयों के अधीन हो और निःशुल्क हो। इसका व्यय राष्ट्र, राज्य द्वारा अथवा राज्य के अतिरिक्त साधनों से जुटा कर करे।

(१३) पुलिस राज्याधीन हो। सेना राष्ट्रपति के अधीन हो। राष्ट्रपति एक समिति नियुक्त करे और राष्ट्रपति सेना का प्रबन्ध उस समिति की सहायता से करे।

वर्तमान संविधान में संसद ही राज्य है। यह शिक्षा अधिकारी भी है। यह ही सेना और न्यायपालिका का स्वामी है। संसद ही धर्म सभा है और यह सर्व-शक्ति सम्पन्न मानी गई है। इसी कारण देश में कुछ भी प्रबन्ध ठीक नहीं हो रहा।

अन्त में हम बम्बई के साप्ताहिक "इलस्ट्रेटिड वीकली" का धन्यवाद करते हैं, जिसने अनजाने में यह प्रेरणा दी है कि हिन्दू राष्ट्र (हिन्दू स्टेट) का विस्तार से वर्णन किया जाये।

०००

Central Library
167977
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

081
167977

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


GURUKUL KANGRI LIBRARY

| | Signature | Date |
|---|---|---|
| Access No. | | |
| Class No. | | |
| Cat No. | | |
| Tag etc. | | |
| E.A.R. | | |
| Recomm. by | | |
| Data Ent. by | | |
| Checked | | |


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या R 089.9143 GUR-U    आगत संख्या 167977

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

| | Signature | Date |
|---|---|---|
| Access No. | | |
| Class No. | | |
| Cat No. | | |
| Tag etc. | | |
| E.A.R. | | |
| Recomm. by. | | |
| Data Entry by | | |
| Checked | | |


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## श्री गुरुदत्त

**(1894 & 1989)**

*शिक्षा : एम. एस-सी.*

प्रथम उपन्यास "स्वाधीनता के पथ पर" से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रूके नहीं।

विज्ञान की पृष्ठिभूमि पर वेद, उपनिषद् दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये।

वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना गुरुदत्त की ही विशेषता है।

उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास पढ़ना आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नहीं जा सकता।

.08
C
1

हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी.चैम्बर्स,
10/54, देश बंधु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005
फोन : 23553624, 23551344
ई-मेल : indiabooks@rediffmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar